खंड 1

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना

खंड 1 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना

खण्ड परिचय

इकाई 1 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना, विकास और महत्त्व

इस इकाई का उद्देश्य आपको लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) की संकल्पना (Concept) के बारे में समझाना है। यह लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के भारतीय विकास के संदर्भ में जानकारी प्रदान करती है। यह लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के महत्त्व के बारें में भी जानकारी प्रदान करती है।

इकाई 2 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के संदर्भात्मक आयाम – I : राजनीतिक, संवैधानिक और प्रशासनिक

राजनीतिक, संवैधानिक और प्रशासनिक परिवेशों के संदर्भ में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) की आवश्यकता है। यह इकाई भारत के संदर्भ में संवैधानिक, राजनीतिक और प्रशासनिक परिवेश के बारे में जानकारी देती है। यह विकेन्द्रीकरण में अंतर्निहित (Inherent) राजनीतिक और प्रशासनिक संभावनाओं के बारे में भी जानकारी प्रदान करती है।

इकाई 3 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रासंगिक आयाम – II : सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक

यह इकाई सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक दृष्टिकोण से लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रासंगिक आयामों (Contextual dimensions) को विशिष्ट रूप से वर्णित करती है। यह विकेन्द्रित प्रशासन (Decentralised Administration) की संकल्पना और संवैधानिक संदर्भ पर प्रकाश डालती है।

इकाई 1 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना, विकास और महत्त्व

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना

1.3 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का विकास

1.4 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का महत्त्व

1.5 भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

1.6 सारांश

1.7 मुख्य अवधारणाएँ

1.8 संदर्भ व अन्य लेख

1.9 अभ्यास

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) की संकल्पना (Concept) के बारे में समझ सकेंगे;
- लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के विकास और महत्त्व के बारे में जान सकेंगे; और
- भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ में ही लोकतंत्रों में सुधार एवं परिवर्तन लाने के लिए नीतिगत और सैद्धान्तिक विकेन्द्रीकृत शासन (Decentralised governance) प्रणाली लागू की गई। इन परिवर्तनों से पारदर्शिता (Transparency), संवेदनशीलता (Responsiveness) और जवाबदेही (Accountability) के गुण आते हैं तथा अच्छे शासन को सुनिश्चित करते हैं। आज विकास व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण और लोकतंत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। तीव्र सामाजिक परिवर्तन और विकासात्मक गतिविधियों के विद्यमान संदर्भ में भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की समकालीन प्रवृत्तियों का सामना करने के लिए नौकरशाही मुक्तिकरण (Debureaucratisation) और विकेन्द्रीकरण को सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है। ऐसे परिवेश अथवा परिदृश्य (Scenario) में इस इकाई में ग्रामीण और शहरी सामाजिक क्षेत्रों के शासन के लिए संस्थात्मक तंत्र अथवा प्रणाली (Institutional Mechanism) के रूप में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के संकल्पनात्मक संदर्भों (Conceptual Aspects) और महत्त्व की चर्चा करने का एक प्रयास किया गया है।

1.2 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना

लोकतंत्र को विचारों, वैचारिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति, विश्वास, मत और उपासना की स्वतंत्रता, स्थिति और अवसरों की समानता, बंधुत्व तथा राजनीतिक निर्णय निर्माण में भागीदारी के अधिकार के कारण सर्वोत्तम सरकार माना जाता है। लोगों द्वारा देश की शासन प्रणाली में भागीदारी और उसका नियंत्रण लोकतंत्र का मूल तत्व है। यह भागीदारी तभी संभव है जब राज्य के अधिकार जिला, खण्ड और ग्राम स्तरों पर विकेन्द्रीत हों, जहाँ सभी वर्गों के लोग एकत्रित हों, अपनी समस्याओं की चर्चा कर संभावित समाधानों की योजना बना सकें तथा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन पर नजर रख सकें। शायद यह लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का मूल तत्व (Crux) है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को समझने के लिए "लोकतांत्रिक" (Democratic) तथा "विकेन्द्रीकरण" (Decentralisation) शब्दों के बारे में समझना आवश्यक है। "लोकतांत्रिक" शब्द संकल्पना की प्रकृति और उसके उद्देश्य की व्याख्या करता है जो एक संस्थात्मक संरचना में इसका दावा भी होता है। "विकेन्द्रीकरण" शब्द मुख्यतः लोकतांत्रिक में समाहित उद्देश्य का अनुभव करने की पद्धति का संकेत है। विकेन्द्रीकरण का अर्थ है योजना निर्माण, निर्णय करने या प्रशासनिक अधिकारों को केन्द्रीय सरकार से उसके क्षेत्रीय संगठनों, स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों, अर्ध-स्वायत्त (Semi-autonomous) संगठनों, स्थानीय सरकारों या गैर-सरकारी संगठनों को हस्तांतरित करना। विकेन्द्रीकरण के विभिन्न रूपों में अंतर मुख्यतः योजना निर्माण, निर्णय निर्माण और प्रबंधन में हस्तांतरित अधिकार और प्राप्त स्वायत्तता की मात्रा के द्वारा किया जा सकता है। साधारणतः विकेन्द्रीकरण के अंतर्गत अधिकार केन्द्र सरकार के स्तर पर ही सकेन्द्रित नहीं होते अपितु छोटी प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित किए जाते हैं।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और प्रत्यायोजन (Delegation) में अंतर होता है। प्रत्यायोजन का अर्थ है वरिष्ठ स्तर से अधीनस्थ स्तर को अधिकार प्रदान करना है जिनका प्रयोग अधिकार के रूप में नहीं, अपितु प्राप्त छूट के रूप में किया जाता है और वह भी वरिष्ठ अधिकारी की कृपा से इस्तेमाल किया जाता है। दूसरी तरफ "लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" का अर्थ है वरिष्ठ अधिकारी स्तर द्वारा अधीनस्थ स्तर पर इस्तेमाल किए जाने वाले अधिकार में छूट नहीं अपितु अधिकार के रूप में प्रदान करना। इस प्रकार लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण लोकतांत्रिक सिद्धान्त का विस्तार है जिसका उद्देश्य उच्चतर स्तरों से न्यूनतम हस्तक्षेप और नियंत्रण के साथ राजनीतिक निर्णय निर्माण, वित्तीय नियंत्रण और प्रशासन प्रबंधन के सभी तीनों आयामों में लोगों के प्रतिनिधि संगठनों को उच्च स्तरों से निम्न स्तरों पर अधिकारों के वितरण का हस्तांतरण के माध्यम से लोगों की भागीदारी, अधिकार और स्वायत्तता के क्षेत्र को व्यापक बनाना है।

"लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" की भावना "प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण" से भिन्न है। "लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" "प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण" से अधिक व्यापक है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य सरकार के साथ राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सभी स्तरों पर अधिक से अधिक लोगों को संबद्ध बनाता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण स्थानीय कल्याण के लिए लोगों को अपनी परियोजनाओं को स्वायत्ततापूर्वक आरंभ करने और उन्हें लागू करने तथा संचालित करने के लिए उनके अधिकारों का समर्थन करता है। प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण की उत्पत्ति प्रशासनिक कर्मचारियों विशेषतः निम्न स्तरों पर प्रशासनिक कर्मचारियों की पहल, कार्य निष्पादन और गति के संदर्भों में दक्षता की आवश्यकता के कारण हुई है। "प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण" का अर्थ परियोजनाएँ लागू करने के अधिकारों की स्वतंत्रता है। इसमें सम्बद्ध योजना बनाने के लिए प्रशासनिक कर्मचारियों का अधिकार शामिल है।

"लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण" को लोकतांत्रिक केन्द्रवाद से भिन्न भी समझना चाहिए। लोकतांत्रिक

केन्द्रीकरण लोकतंत्र को केन्द्रीयवाद के साथ संबद्ध करता है। यह केन्द्राभिमुखी है। इसमें प्रमुख स्तरों से शीर्ष स्तरों पर संपूर्ण समर्पण करने की सीमा तक अधिकारों का हस्तांतरण और केन्द्रीकरण होता है, जो पिरामिडीय आकार की संरचना का आधार बनाता है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अपकेन्द्री होता है जिसका निहितार्थ उच्च स्तर से निम्न स्तरों पर अधिकारों का हस्तांतरण करना है। लोकतांत्रिक सिद्धान्त लोकतांत्रिक केन्द्रीयवाद के विचार की तुलना में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना में अधिक व्यापक विनियोग रखता है। लोकतांत्रिक केन्द्रवाद का मुख्य विचार लोकतंत्र के क्षेत्र का विस्तार करना है जो लोगों की प्रतिनिधि संस्थाओं के निम्नतर स्तरों पर अधिकार और स्वायत्तता प्रदान करने के द्वारा शीर्ष पर विद्यमान हो सकता है। फिर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वशासन एक ही चीज नहीं है। यद्यपि दोनों का उद्देश्य लोगों के कार्यकलापों के प्रबंधन में उन्हें अधिक स्वायत्तता प्रदान करने के द्वारा अधिक भागीदार बनाना है तो भी कहा जा सकता है कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एक राजनीतिक आदर्श है और स्थानीय सरकार इसका संस्थात्मक रूप है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण आगे स्थानीय स्वसरकार को लोकतांत्रिक बनाने का तर्क प्रस्तुत करता है ताकि यह स्थानीय मामलों के प्रबंधन में अधिक अधिकारों का उपयोग कर सके, अधिक उत्तरदायी बन सके, अधिक रूचि ले सके तथा अधिक स्वायत्तता का अनुभव कर सके। विकेन्द्रीकरण को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास की आवश्यक शर्त के रूप में माना जाता है। यह सामाजिक सामंजस्य, सामुदायिक भावना और राजनीतिक स्थिरता की स्थापना करता है। विकेन्द्रीकरण अपने आपमें उद्देश्य तो नहीं है परन्तु यह उन हालातों पर निर्भर करता है जिसमें विकेन्द्रीकरण उत्पन्न होता है। लोकतंत्र इसके उत्थान और उपलब्धि को बढ़ाने का श्रेष्ठ परिवेश प्रदान करता है।

1.3 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का विकास

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् नए निर्मित राष्ट्र-राज्यों ने विकास के लिए उत्थान केन्द्रित मॉडल अपनाया। इस मॉडल (स्वरूप) में राज्य ने सामाजिक विकास के लिए नैतिक और राजनीतिक दायित्वों का आश्वासन प्रदान किया। धीरे-धीरे यह प्रमाणित हो गया कि विकास के लिए उत्थान केन्द्रित स्वरूप केवल आर्थिक प्रगति और देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में वृद्धि पर ध्यान केन्द्रित करता है। लेकिन यह इन्हें सामाजिक और पर्यावरणीय कीमतों के बदले ही प्राप्त कर सकता है। विकास का यह स्वरूप समाज के बड़े वर्गों को छोड़ देता है, व्यापक विसंगति उत्पन्न हो जाती है तथा वंचित वर्गों को और अधिक अभावग्रस्त बना देता है। संवेदनशील वर्गों के लिए चलाए गए विशिष्ट कार्यक्रम इसलिए असफल हो गए क्योंकि इनमें लोगों को केवल विकास के "लाभभोगी" और "पात्र" समझा गया। विकास के इस प्रमुख स्वरूप से उत्पन्न विश्वव्यापी असंतोष (Discontent) और मोहभंग (Disillusionment) से इसकी गहन आलोचना हुई।

विकासशील देशों में विकास सम्बन्धी योजना और प्रशासन पर केन्द्र सरकार द्वारा नियंत्रण की मात्रा का इस्तेमाल करने के बारे में एक व्यापक बहस छिड़ी हुई है। भारत में पिछले 50 वर्षों में सुनियोजित विकास के पिछले अनुभव और कल्याणकारी उद्देश्यों को प्राप्त करने, गरीबी उन्मूलन व सामाजिक असमानता को दूर करने तथा सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक उत्थान करने आदि के बारे में प्राप्त परिणामों से शंकाएँ उत्पन्न हुई हैं। अत्यधिक केन्द्रित योजना के परिणामों से यह मोहभंग था। इससे आर्थिक असमानता, क्षेत्रीय विषमता और निर्धनता में वृद्धि हुई। इसलिए विकास सिद्धान्त के मौलिक आधार पर 1970 के दशक में प्रश्न चिह्न लगने लगा।

नीति विश्लेषकों में यह भाव बढ़ने लगा कि जैसे-जैसे सरकारी गतिविधियों में वृद्धि होती है, वैसे-वैसे केन्द्र से सभी विकास गतिविधियों की प्रभावशाली और सक्षम योजना बनाना और उन्हें कार्यान्वित करना कठिन होता है। अतः स्थानीय क्षेत्र के मुख्य सरोकार के बारे में निर्णय करने में स्थानीय स्वायत्तता प्रदान करना तथा विकास कार्यक्रमों को बनाने और उन्हें लागू करने में अधिक उत्तरदायित्व प्रदान

करना आवश्यक हो गया है। इससे विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त की धारणा में रूचि पुनर्जीवित हुई हैं।

पिछले दो दशकों से विकास के मुख्य स्वरूप की आलोंचना के फलस्वरूप भागीदारी विकास एक वैकल्पिक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत हुआ है। विकास का अर्थ, वर्तमान स्थिति से अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ स्थिति की ऐसी परिवर्तन प्रक्रिया जिसमें नागरिकों और संस्थाओं के सुविचारित हस्तक्षेप हों, है। विकास का नया परिप्रेक्ष्य इस बात पर बल देता है कि आर्थिक विकास के साथ लोगों, परिवारों और समुदायों के जीवन स्तर की गुणवत्ता का भी विकास भी सुनिश्चित होना चाहिए। इसे निर्णय निर्माण में लगे लोगों की अधिक भागीदारी, उत्पादक रोज़गार के अवसरों को उत्पन्न करने और स्वास्थ्य, स्वच्छता, शिक्षा और संचार जैसी बुनियादी सेवाओं और उपभोक्ता पदार्थों में लोगों की पहुँच स्थापित करने के द्वारा संभव बनाया जा सकता है। समाज के वंचित वर्गों की विशेष आवश्यकताओं का ध्यान करते हुए विकास प्रक्रिया में उन्हें व्यवस्थित रूप से शामिल करने के विशेष प्रयासों द्वारा विकास को स्थायी बनाया जा सकता है। इससे असमानता में कमी आ सकती है तथा अमीर और निर्धन वर्गों के बीच निरंतर बढ़ते अंतराल को रोका जा सकता है। भागीदारी विकास नीतियों द्वारा यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि और अधिक लोगों की अपने संसाधनों तक पहुँच हो और उन पर उनका नियंत्रण हो।

वैकल्पिक भागीदारी विकास स्वरूप बुनियादी स्तर पर लोगों का दबाव उत्पन्न करने की आवश्यकता बताता है ताकि उन्हें योजना में सक्रिय रूप से भागीदारी करने में समर्थ बनाया जाए, कार्यान्वयन एवं पर्यवेक्षण में शामिल किया जाए और संसाधनों का अधिक समान वितरण हो सके। जन-केन्द्रित विकास स्वरूप विकास प्रक्रिया में लोगों को सक्रिय बनाता है।

फिर अब यह अनुभव किया जाता है कि जिलों से राज्यों और राज्यों से संघ को कार्यों के नीचे से ऊपर की ओर हस्तांतरण ने न तो केन्द्र को मज़बूत बनाने में और न ही प्रभावशाली योजना बनाने में कोई योगदान दिया। वास्तव में, इससे दोनों स्तरों पर विपरीत प्रभाव ही पड़ा है। केन्द्र तथा राज्यों में भी सरकारी तंत्र काफी शिथिल हो गया है। योजनाएँ वास्तविकता से इतनी दूर हो गई हैं कि उनकी विश्वसनीयता खतरे में पड़ गई है। इन हालातों में राजनीतिक दल और विद्वान इस नीचे से ऊपर वाली प्रवृत्ति को उलटने की सोचने लगे जिसका स्पष्ट अभिप्राय केन्द्र से राज्यों को और राज्यों से उप-राज्य स्तरों पर कार्यों का विकेन्द्रीकरण करना है। इसके अतिरिक्त लोकतंत्र का प्रभाव लोक राजनीति की तरफ की प्रक्रिया की बात करता है। लोग अपने कार्य स्वयं करने देने की माँग करने लगे हैं। इस प्रकार ज़र्जर होते केन्द्रीकृत शासन की घिसटती क्षीणता ने राजनीतिक दलों को अपना ध्यान विकेन्द्रीकृत शासन की तरफ देने के लिए प्रेरित किया। विकेन्द्रीकृत शासन की मुख्य आवश्यकताएँ प्रशासन को लोगों के द्वार पर लाना तथा सेवाग्राहियों और प्रशासन के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना हैं। स्थानीय संस्थाएँ, निजी क्षेत्र और नागरिक सामाजिक संगठन सभी विकेन्द्रीकृत शासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद भारत ने शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाया। भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का प्रार्दुभाव औपनिवेशिक शासन के दौरान ही आरंभ हो गया था। लोकतांत्रिक प्रावधान का उल्लेख भारत सरकार अधिनियम, 1909, 1919 और 1935 में किया जा चुका था। संविधान सभा में विचारविमर्श के बाद 1950 में स्वतंत्रता के उपरान्त भारत में लोकतंत्र की स्थापना की गई। भारत में महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू और जय प्रकाश नारायण ने लोकतंत्र को उस सरकार के रूप में वर्णित किया है, जो लोगों को अधिकार प्रदान करती है। गाँधीजी ने कहा है कि "वास्तविक लोकतंत्र शीर्ष पर बैठे हुए लोगों के द्वारा नहीं बनाया जा सकता। यह प्रत्येक गाँव के नीचे के लोगों द्वारा बनाया जाता है।" लोकतंत्र ऊपर के स्तर पर तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक इसे निचले स्तर से नहीं बनाया जाए।

भारत में पंचायती राज संस्थाएँ लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के मामले में संसार के सामने एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर सकती हैं। विकेन्द्रीकरण के प्रथम बिन्दु पर मुख्यतः तीन विचारधाराएँ हैं। बलबंत राय मेहता रिपोर्ट लोगों के निकटतम होने के कारण खण्ड स्तर का समर्थन करती है (1957)। योजना के विकेन्द्रीकरण पर सुखमाय, चक्रवर्ती (आर्थिक सलाहकार परिषद, 1984) रिपोर्ट उपयुक्त क्षेत्र योजना के लिए जिले को भी अत्यधिक छोटा समझती है। फिर भी पंचायती राज पर अशोक मेहता रिपोर्ट (1978) स्पष्ट रूप से जिले का समर्थन करती है क्योंकि यह सदियों से स्थानीय प्रशासन की धुरी रहा है और इस स्तर पर योजना और सम्बन्धित कार्यों के लिए आवश्यक विशेषज्ञताएँ जुटायी जा सकती हैं जोकि इससे निचले स्तर पर संभव नहीं। दंतवाला रिपोर्ट (1978) ने खण्ड स्तरीय योजना पर और हनुमंतराव रिपोर्ट (1984) ने सारांशतः जिला योजना की विचारधारा का समर्थन किया है। राजनीतिक दलों में भी यह धारणा बनी है कि राज्य स्तर से प्रथम अवस्था के विकेन्द्रीकरण के लिए जिला स्तर सर्वाधिक उपयुक्त स्तर है।

लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकेन्द्रीकरण का समर्थन करने वाली बलबंत राय मेहता समिति रिपोर्ट की मूल अपेक्षा निर्णय केन्द्रों को लोगों के निकट ले जाने का एक प्रयास था ताकि वे स्थानीय लोकप्रिय नियंत्रण के अंतर्गत सक्रिय एवं निरंतर भागीदारी करने में सक्षम हो सकें। अशोक मेहता समिति की मुख्य विचारधारा प्रशासन को विकेन्द्रीकृत कर लोगों के निकट लाने की क्रियात्मक आवश्यकता वाली थी। बलबंत राय मेहता समिति रिपोर्ट तथा अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट दोनों को भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना के रूप में माना जा सकता है। 73वें तथा 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के साथ विकेन्द्रीकरण को लोकतांत्रिक बनाया गया और आधारभूत स्तर पर महिलाओं, अन्य पिछड़े वर्गों तथा दलितों को शामिल करने के लिए लोकतंत्र के दायरे का विस्तार किया गया। इससे पूर्व स्थानीय शासन की संस्थाओं पर समाज के केवल प्रभावशील समूहों को आधिपत्य था। इससे लोकतंत्र के मुख्य उद्देश्य समाप्त हो जाते थे। लोकतंत्र को समाज की वास्तविकता में समाहित करना होता है। लोकतंत्र की इस विचारधारा को स्थायी लोकतंत्र के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। पिछले दो दशकों में भारत में स्थायी लोकतंत्र ने लोकतांत्रिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

1.4 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का महत्त्व

आज लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण विश्व व्यापी घटना है। विकेन्द्रीकरण को विकास के सिद्धान्त के रूप में देखा जाना चाहिए जिसमें अभावग्रस्त और निर्धन वर्गों को सशक्त बनाने और उनका उत्थान करने के लिए अनेक प्रकार की संस्थाओं की आवश्यकता होती है। निम्नतर स्तर पर ऐसा प्रशासनिक स्थान बनाने के लिए कार्य करने की आशा की जाती है जहाँ निर्धन वर्ग की अनुभूत आवश्यकताओं पर विचार किया जा सके। विकेन्द्रीकरण एक प्रमुख तंत्र प्रणाली है जिसके माध्यम से लोकतंत्र वास्तविक रूप से प्रतिनिधितात्मक और संवेदनशील बनता है।

जी शब्बीर चीमा और डेनिस ए रोनडनियली ने अपनी पुस्तक डी सेंटरलाइजेशन एण्ड डेवलपमेंट में विकेन्द्रीकरण के निम्नलिखित लाभों का वर्णन किया है :

1) विभिन्न क्षेत्रों (Heterogeneous regions) और समूहों की आवश्यकताओं के अनुकूल (tailor-made) योजनाएँ बनाना संभव है।

2) इससे नौकरशाही अथवा दफ्तरशाही (Red-tape) कम हो सकती है।

3) सरकारी अधिकारियों और स्थानीय जनता के बीच निकट सम्बन्ध बनाना संभव है।

4) इसके द्वारा राष्ट्रीय राजधानी से सुदूर क्षेत्रों में राष्ट्रीय नीतियाँ अच्छी तरह पहुँचाई जा सकती है।

5) इससे विकास सम्बन्धी निर्णय निर्माण में राजनीतिक, धार्मिक, मानवतावादी और जनजातीय समूहों का अत्याधिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होगा जिससे संसाधनों का अपेक्षाकृत अधिक एक समान आबंटन हो सकेगा।

6) स्थानीय संस्थाओं की क्षमता और उनकी प्रबंधन व तकनीकी दक्षता का विकास होगा।

7) शीर्ष प्रबंधन को सामान्य कार्यों से मुक्ति मिल जाएगी और वह अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों में अपना समय लगा सकेगा।

8) इससे बेहतर समन्वय हो सकेगा।

9) इससे नागरिकों की भागीदारी संगठित होगी और सूचनाओं का आदान प्रदान हो सकेगा।

10) इससे विशिष्ट लोगों का प्रभाव नष्ट हो सकेगा।

11) इससे अधिक लचीला, नवाचार एवं रचनात्मक प्रशासन उत्पन्न होगा।

12) स्थानीय लोग केन्द्रीय अभिकरणों की तुलना में योजना का अच्छा कार्यान्वयन, पर्यवेक्षण और विश्लेषण कर सकते हैं।

13) निर्णय निर्माण में स्थानीय लोगों की बढ़ती भागीदारी से अधिक राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित होगी।

14) इससे योजना की लागत में कमी और सार्वजनिक चल सम्पत्तियों की संख्या में वृद्धि भी होगी।

समाज के लिए विकेन्द्रीकृत शासन की नई संरचना अथवा ढाँचा (Framework) निम्नलिखित उपायों के द्वारा स्थापित किया जा सकता है।

i) अपने विचारों और अवबोधनों को स्पष्ट करने के लिए लोगों को अवसर तथा मंच प्रदान करना;

ii) सेवा प्रदान करने वाले केन्द्रों को लोगों के निकट ले जाना; तथा

iii) स्वशासन संस्थाओं के रूप में स्थानीय संस्थाओं को शक्तिशाली बनाना।

विकेन्द्रीकरण अधिकारों के विभाजन और हस्तांतरण के माध्यम से स्थानीय लोगों को शक्तिशाली बनाने का कार्य करता है। विकेन्द्रीकृत शासन आत्म सहायता समूहों जैसे आधारभूत संगठनों को शामिल करने के द्वारा स्थानीय प्रयासों और परंपराओं को शामिल करता है। केन्द्रीकृत शासन के माध्यम से प्रतिनिधि लोकतंत्र तथा भागीदारी लोकतंत्र दोनों ही संभव हो जाते हैं। विकेन्द्रीकृत शासन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता पारस्परिक नीति निर्माण करना है जो विकेन्द्रीकृत नीति निर्माण की ओर ले जाती है। पारस्परिक नीति वह प्रक्रिया है जिसमें सरकारी और ग़ैर-सरकारी क्षेत्र जैसे निजी क्षेत्र, ग़ैर-सरकारी संगठन, समुदाय, आधारभूत संगठन, दबाव समूह सभी निर्णय निर्माण में शामिल होते हैं ताकि मुद्दों पर अपना प्रभाव डाल सकें और विकल्पों का सुझाव प्रदान कर सकें। इस प्रकार विकेन्द्रीकृत शासन विकास की वैकल्पिक कार्यनीति है जो जनता केन्द्रित, भागीदारी और निचले वर्गों का उत्थान करने वाला विकास तंत्र है।

विकेन्द्रीकृत शासन जनता के लिए श्रेष्ठ है। सरकार के कार्यों को लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं। यह नीतिगत निर्णयों को स्वतंत्र ढंग से आरंभ करने और लागू करने के लोगों के अधिकार की संकल्पना पर आधारित है। यह स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने का अधिक प्रभावशाली तरीका

है। यह भिन्न-भिन्न स्थानों पर अनेक प्रकार के हालातों का मुकाबला करने के लिए अनुकूल तंत्र प्रणाली प्रदान करता है। विकेन्द्रीकृत शासन निर्धन वर्ग को राजनीति में शामिल होने में समर्थ बनाता है जो निर्धनता रोधक कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है।

तीसरी दुनिया के देशों के संदर्भ में विकेन्द्रीकृत शासन का विशेष महत्त्व है क्योंकि विकास का लक्ष्य समूह निर्धन व्यक्ति हैं। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार 75 विकासशील देशों में से 50 लाख की जनसंख्या के साथ लगभग 12 देशों ने विभिन्न मात्रा में वित्तीय और राजनीतिक अधिकारों के साथ किसी न किसी रूप में विकेन्द्रीकरण को लागू किया हुआ है। इन विकासों के साथ फिलीपीन, भारत, होंडुरास, बोलिविया, नामीबिया, युगाण्डा, तंजानिया, ब्राजील, नाइजीरिया जैसे देशों में स्थानीय स्तर पर भागीदारी करने वाले लोगों के लिए कानूनी संरचना और संस्थात्मक तंत्र प्रणाली भी बनाई गई है। विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया को मज़बूत बनाने के लिए भारत जैसे कई देशों ने संविधान संशोधनों को आधार बनाया है। देश की शासन संरचना में नया स्तर बनाने के लिए भारत ने 73वें और 74वें संविधान संशोधन किए हैं जिनके द्वारा पंचायतों और शहरी स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्वीकृति प्रदान की गई है। इन संविधान संशोधनों में शहरी और ग्रामीण दोनों स्थानीय स्वशासन सरकारों को हस्तांतरित किए जाने वाले कार्यों की बड़ी सूची प्रदान की गई है। ये संशोधन ग्राम सभा और वार्ड समितियों के माध्यम से लोगों की भागीदारी को संस्थात्मक बनाते हैं।

1.5 भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

1959 में पंचायती राज की स्थापना से ही योजना प्रक्रिया की आधारभूत अथवा बुनियादी स्तर पर शासन एक बड़ी चिन्ता रही है। अनेक वर्षों से विकसित लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की मूल भावना का अनुपालन सीमित रूप से ही हो रहा हैं अनुभव किया गया है कि भारत में विकास के प्रयास समानता के मुद्दों और निर्धनों के विकास से अछूते हैं। इसलिए विकास के प्रयासों को निर्धनों और बुनियादी स्तर के लोगों की तरफ मोड़ने की आवश्यकता है। भारत में विकेन्द्रीकृत शासन की दिशा में 73वां और 74वां संविधान संशोधन बड़ा कदम रहा है। 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं में सुधारों से सम्बन्धित है जबकि 74वां संविधान संशोधन अधिनियम शहरी स्थानीय संस्थाओं में सुधार से सम्बन्धित है। ये संविधान संशोधन ग्रामीण और शहरी स्थानीय संस्थाओं की संवैधानिक मान्यता के अनुकूल हैं। एक तरफ इन अधिनियमों का उद्देश्य योजना प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी संकल्पना को औपचारिक रूप से जोड़ना है और दूसरी तरफ लोगों को उनकी ज़िम्मेदारी का हस्तांतरण करना भी है। इन अधिनियमों ने अनियमित चुनावों, दमन, अपर्याप्त प्रतिनिधित्व, अधिकारों का अपर्याप्त हस्तांतरण, प्रशासनिक और वित्तीय स्वायत्तता का अभाव और अपर्याप्त संसाधनों की स्थायी समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया है।

- **ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण**

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास ने भारतीय विकास कार्यनीति की मूल संरचना की। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य विकास प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी के माध्यम से ग्रामीण निर्धन वर्ग की क्षमताओं का श्रेष्ठतम उपयोग करने के लिए उन्हें अवसर प्रदान कर उनका जीवन स्तर सुधारना था। विकास निर्णय निर्माण प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाओं में लक्ष्य समूह और सामान्य जनता की भागीदारी से विकास कार्यक्रमों की सफलता की अच्छी संभावना रहती है। विकास की प्रक्रिया में ग्रामीण लोगों की भागीदारी बढ़ाने के लिए और निर्णय निर्माण तथा विकेन्द्रीकृत योजना में उन्हें शामिल करने के लिए भारत सरकार ने 1992 में 73वाँ संविधान संशोधन किया जिसके द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई।

73वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से संविधान पंचायतों को स्थानीय स्व-सरकारों की

संस्थाओं के रूप में देखता है, जिन्हें राज्य विधानमंडल की इच्छानुसार अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरण किया जाता है। पहली बार पंचायत स्तर पर स्वसरकार की स्थापना हुई। गाँव योजना के आधार बन गए। ग्राम पंचायत को योजना निर्माण का उत्तरदायित्व सौंपा गया जिसे लोगों के द्वारा ग्राम सभा के माध्यम से पूरा किया जाता है। यह संशोधन जिला और यहाँ तक की उससे निचले स्तरों पर भी विकेन्द्रीकृत शासन प्रदान करता है। इसके द्वारा जिला, खण्ड और गाँव स्तर पर जन-अभिकेन्द्रित संस्थाओं की स्थापना की गई है। इस संशोधन में पंचायती राज संस्थाओं को अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरण किया है। ग्यारहवीं अनुसूची में पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित किए जाने वाले 29 विषयों को सूचीबद्ध किया गया है। पंचायती राज संस्थाएँ सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास से सम्बन्धित योजनाएँ बनाने के लिए उत्तरदायी हैं।

संविधान संशोधनों के द्वारा राज्य चुनाव आयोग और राज्य वित्त आयोग की भी स्थापना की गई है। राज्यों में इन आयोगों की स्थापना से ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में काफी सुधार हुआ है।

- **शहरी क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण**

हाल ही के दशकों में कई अन्य विकासशील देशों की तरह भारत में तेज़ी से प्रगति हुई है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत की शहरी आबादी मुश्किल से 10 प्रतिशत थी और 1990 के दशक में वह 26 प्रतिशत हो गई है। वर्तमान में प्रत्येक दो दशकों के बाद शहरी आबादी दुगुनी हो रही है। अनुमान है कि 2025 तक भारत की आधी आबादी शहरी आबादी होगी। दसवीं पंचवर्षीय योजना का कथन है कि 2020 तक शहरी आबादी कुल आबादी का 28 प्रतिशत से बढ़कर 40 प्रतिशत तक हो जाएगी। इससे देश की शहरी आधारभूत संरचना पर काफी दबाव बढ़ जाएगा।

स्थानीय सरकार की इकाइयों के रूप में नगर संस्थाएँ जैसे पंचायतें, संरचनात्मक, कार्यात्मक और वित्तीय बाधाओं के कारण प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर रही हैं। उन्हें पुनः सशक्त बनाने के लिए उपाय बताने हेतु समय-समय पर कई समितियाँ और आयोग गठित किए गए। लगभग सभी समितियों ने शहरी स्थानीय संस्थाओं (Urban Local Bodies; ULBs) को मज़बूत बनाने की सिफारिश की है। शहरी शासन को मज़बूत बनाने के लिए संसद ने 1992 में 74वें संविधान संशोधन अधिनियम को लागू किया। इस अधिनियम ने उन्हें संवैधानिक मान्यता प्रदान की जो शहरी स्थानीय संस्थाओं के इतिहास में एक मील का पत्थर है। यह संशोधन शहरी स्थानीय सरकारों को न केवल संवैधानिक स्थिति प्रदान करता है अपितु इसके द्वारा उनके लोकतांत्रिक कार्य प्रणाली, संसाधनों और अधिकारों को मज़बूती प्रदान करने के लिए अन्य उपाय भी शामिल किए गए हैं। इस अधिनियम का उद्देश्य विकेन्द्रीकरण पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना और शहरी क्षेत्रों में लोकतांत्रिक शासन संरचना स्थापित करना है।

- **जनजातीय और अनुसूचित क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण**

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के हितों, उनकी स्वायत्तता और अधिकारों की सुरक्षा के लिए पाँचवीं और छठी अनुसूची के माध्यम से संविधान में विशेष प्रावधान किए गए हैं। पाँचवीं अनुसूची अनुसूचित क्षेत्रों के रूप में जनजातीय आधिपत्य वाले क्षेत्रों की और राज्य स्तर पर जनजातीय सलाहकार परिषद के गठन की अधिसूचना जारी करती है। छठी अनुसूची स्वायत्त जिला परिषदें और स्वायत्त क्षेत्रों की स्थापना करती है जिन्हें वैधानिक, न्यायिक, कार्यकारिणी और वित्तीय अधिकार प्रदान किए गए हैं।

जनजातीय और अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज संस्थाओं की तरह संरचनाएँ बनाने के लिए विस्तृत विवरण तैयार करने के लिए भारत सरकार ने दिलीप सिंह भूरिया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। समिति ने निम्नलिखित मुख्य सिफारिशें कीं :

- **ग्राम्य सभा**

प्रत्येक आवासीय समुदाय की एक ग्राम सभा हो जो प्राकृतिक क्षेत्रों का निपटान करेगी, मतभेदों को समाप्त करेगी और अपने अधीन संस्थाओं जैसे विद्यालय और सहकारी संस्थाओं का प्रबंध करेगी।

- **ग्राम पंचायत**

प्रत्येक ग्राम सभा के प्रतिनिधियों की चुनी गई संस्था निचले स्तर पर अनिर्णित मतभेदों के लिए अपीलीय प्राधिकरण के रूप में भी कार्य करेगी।

- **खण्ड/ताल्लुक स्तर की संस्था**

यह समिति द्वारा प्रस्तावित अगली उच्चस्तरीय संस्था है। इसके अतिरिक्त समिति ने जिला स्तर पर स्वायत्त जिला परिषद की चुनी हुई संस्था का भी सझाव दिया है जिसे छठी अनुसूची के अंतर्गत शामिल जनजातीय क्षेत्रों के लिए वैधानिक, कार्यकारी और न्यायिक अधिकार प्राप्त होंगे।

भूरिया समिति ने तीन स्तरीय अधिकारों और कार्यों की विस्तृत सिफारिश भी की है। समिति ने सामान्य संदर्भ में भी सुझाव दिया है कि अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों को बढ़ती ऋणग्रस्तता, भूमि हस्तांतरण, वन कटाई, पारिस्थितिकीय विकार, औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण के कारण होने वाले विस्थापन आबकारी नीति मद्य और नशीली द्रव्य व्यसन, जल संग्रह और जल संसाधनों आदि जैसी समस्याओं से निपटने के लिए पर्याप्त अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए।

भूरिया समिति की सिफारिशों के अनुसार 24 दिसम्बर 1996 को एक अधिनियम पारित किया गया जिसमें पंचातयों से सम्बन्धित संविधान के भाग IX में स्थित प्रावधानों को अनुसूचित क्षेत्रों तक बढ़ाया गया।

स्थानीय स्वसरकार शासन के विकेन्द्रीकृत स्वरूप के संचालन की एक पद्धति है। उपरोक्त संविधान संशोधनों की एक उल्लेखनीय विशेषता समाज के अभावग्रस्त वर्गों से स्थानीय स्तर पर नेतृत्व की नई पीढ़ी का उदय होना है। अब तक लोकतंत्र के परिणामों से वंचित समाज के कमजोर वर्गों को इसके परिणाम उपलब्ध कराए गए। 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्थानीय स्वसरकारों को लोकतांत्रिक बनाया और स्थानीय स्तर पर स्थाई लोकतंत्र की स्थापना की।

1.6 सारांश

आज विकास की व्यवस्था में विकेन्द्रीकरण और लोकतंत्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त हैं। विकेन्द्रीकरण का अभिप्राय है केन्द्रीय सरकार द्वारा योजना, निर्णय निर्माण या प्रशासनिक अधिकार अपने क्षेत्रीय अभिकरणों को हस्तांतरित करना। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण लोकतांत्रिक सिद्धान्तों का विस्तार है जिसका उद्देश्य लोगों के प्रतिनिधि संगठनों को अधिकारों के हस्तांतरण द्वारा लोगों की भागीदारी, अधिकार और स्वायत्तता के क्षेत्र को व्यापक बनाना है।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण आज एक विश्वव्यापी घटना है। भारत में 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के क्षेत्र का विस्तार किया है। इन अधिनियमों ने ग्राम सभाओं और वार्ड समितियों के माध्यम से लोगों की भागीदारी को स्थापित कर दिया है। इन संविधान संशोधनों की एक उल्लेखनीय विशेषता समाज के महिला और उपेक्षित वर्गों से स्थानीय स्तर पर नेतृत्व की एक नई पीढ़ी का उदय होना है। इन संविधान संशोधनों ने स्थानीय स्तर पर स्थायी लोकतंत्र स्थापित करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

1.7 मुख्य अवधारणाएँ

विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) : केन्द्रीय सरकारों से अपने क्षेत्रीय संगठनों, स्थानीय प्रशासनिक इकाइयों, अर्ध स्वायत्त संगठनों, स्थानीय सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों को योजना, निर्णय निर्माण या प्रशासनिक अधिकार हस्तांतरित करना।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) : यह लोकतांत्रिक सिद्धान्त का विस्तार है जिसका उद्देश्य राजनीतिक निर्णय निर्माण, वित्तीय नियंत्रण और प्रशासन प्रबंधन के तीन आयामों में उच्च स्तर से निम्न स्तरों पर लोगों के प्रतिनिधि संगठनों को अधिकार हस्तांतरित करने के माध्यम से लोगों की भागीदारी, अधिकार और स्वायत्तता के क्षेत्र का विस्तार करना है। इसका अभिप्राय स्थानीय कल्याण के लिए अपनी परियोजनाओं को स्वायत्त तरीके से आरंभ करने और कार्यान्वयन एवं संचालन के लिए लोगों के अधिकारों का समर्थन करना है।

प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण (Administrative Decentralisation) : परियोजनाओं को स्वतंत्रता से लागू करने का अधिकार। इसमें प्रशासनिक दक्षता के लिए सम्बद्ध योजना बनाने में प्रशासनिक कार्मिकों, विशेषतः निम्न स्तरों पर प्रशासनिक कर्मिकों के अधिकार शामिल हैं।

लोकतांत्रिक केन्द्रीयवाद (Democratic Centralism) : यह लोकतंत्र को केन्द्रीयवाद के साथ संबद्ध करता है। यह केन्द्राभिमुखी है। इसमें लोकप्रिय स्तरों से उच्च स्तरों पर संपूर्ण समर्पण की मात्रा तक अधिकारों का हस्तांतरण करना शामिल है।

1.8 संदर्भ व अन्य लेख

चक्राबर्ती, बिद्युत् एवं मोहित भट्टाचार्य, 2003, (संपा.) *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए रीडर,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

जोशिल, आर. पी. एवं जी.एस. नर्वानी, 2002, *पंचायती राज इन इंडियाः इमीर्जिंग ट्रेन्ड्स एक्रॉस दी स्टेट्स,* रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, नई दिल्ली।

भट्टाचार्य, मोहित, 1999, *रिस्ट्रक्चरिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : एस्सेस इन रिहेबिलिटेशन,* जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्ज़, नई दिल्ली।

अरोड़ा, रमेश, के. (सम्पा.) 2001, *मैनेजमेंट इन गवर्नमेंट : कंसर्न्स एंड प्रायोटिंज,* आलेख पब्लिशर्स, जयपुर।

अरोड़ा, रमेश, के. (सम्पा.) 2004, *पब्लिक एडमिनेस्ट्रेशनः फ्रेश पर्सपेक्टिवस,* आलेख पब्लिशर्स, जयपुर।

शिवा सुब्रहमण्यम के. एवं आर. सी. चौधरी, 2002, *फंक्शनल एंड फाइनेंशियल डिवोलुशन ऑन पंचायत इन इंडिया,* एन आई आर डी, हैदराबाद।

शिवारामा कृष्णा के.सी., 2003, *पॉवर टू दी पीयुपल : दी पॉलिटिक्स एंड प्रोग्रेस ऑफ डिसेंट्रलाइजेशन,* कोणार्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

वायुनंदन, ई., एवं डॉली मैथ्यु (संपा.), 2003, *गुड गवर्नेंस : इनीशिएटिव्स इन इंडिया,* प्रैन्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992, भारत सरकार, नई दिल्ली।

संविधान (74वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992, भारत सरकार, नई दिल्ली।

प्रसाद, नागेश्वर, 1984, *डिसेंट्रलाइजेशन इन हिस्ट्रीकल पर्सपेक्टिव्स,* गाँधीयन इंस्ट्रीट्यूट ऑफ स्टडीज, वाराणसी।

स्मिथ, बी.सी., 1985, *डिसेंट्रलाइजेशन : दी टेरिटोरियल डायमेंशन ऑफ दी स्टेट,* जॉर्ज एलेन एंड अनविन, लंदन।

फाउंडेशन कोर्स इन ह्यूमेनटीज एंड सोशल साईन्सेज स्टडी मैटिरियल, इग्नू, स्कूल ऑफ ह्यूमेनटीज एंड सोशल साईन्सेज, नई दिल्ली, 1990।

1.9 अभ्यास

1) अपने जिले की स्थानीय स्व-सरकारी संस्थाओं की संरचना, अधिकार और कार्यों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

2) अपने राज्य की ग्रामीण और शहरी स्थानीय सरकारों में 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियों के कार्यान्वयन की जाँच कीजिए और एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

इकाई 2 लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के संदर्भात्मक आयाम – I : राजनीतिक, संवैधानिक और प्रशासनिक

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 परवर्ती आधुनिकतावादी समीक्षा

2.3 चयन का राजनीतिक परिवेश

2.4 संवैधानिक आयाम

2.5 प्रशासनिक तर्क

2.6 विकेन्द्रीकरण पर वाद-विवाद

2.7 सारांश

2.8 मुख्य अवधारणाएँ

2.9 संदर्भ व अन्य लेख

2.10 अभ्यास

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण (Democratic Decentralisation) के लिए संवैधानिक आयामों/अनुबंधों के बारे में जान सकेंगे;
- विकेन्द्रीकरण में अंतर्निहित (Inherent) राजनीतिक और प्रशासनिक संभावनाओं को ज्ञात कर सकेंगे; और
- विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित विषयों अथवा मुद्दों का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की उस *परवर्ती-आधुनिकतावाद* (*Post-modernism*) के संदर्भ में समीक्षा करने की आवश्यकता है जिसका राजनीतिक संदर्भ में "अधिकारों से वैयक्तिक मूल्यों" (Authority to Individuation Values) पर और "भौतिक कल्याण से बौद्धिक और भावात्मक" सरोकारों" (material weflare to aesthetic and spiritual concerns) पर वैचारिक परिवर्तन होने के रूप में महत्त्व है जिसका मूल सार सर्वव्यापक सतत् विकास है। व्यवस्था और अनुरूपता पर आधुनिकतावादी महत्त्व/बल धर्म निरपेक्ष, धार्मिक और सांस्कृतिक मामलों में बहुवादी तथा विभिन्नताओं के सामने कम हो रहा है जो नैतिक/अधिकार की संकल्पना की पुनर्व्याख्या करता है। यह प्रतिमान सांस्कृतिक परिवर्तन विकासात्मक

प्रशासन के लिए सार्वजनिक नीति में तेजी से प्रकट हो रहा है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की सिफारिश केन्द्रीय नियंत्रण विशेषतः आयोजना में नियंत्रण के विकल्प के रूप में की जा रही है जो स्थानीय भिन्नता के लिए कम सम्मान दर्शाता है (इंगल्हर्ट, 1997)। बहुवाद (Pluralism) लोकतंत्र का सार तत्व है। लोक नीति में सभी हितों को शामिल करने के लिए संस्थात्मक होना आवश्यक है। इस इकाई में हम विकेन्द्रीकरण की राजनीतिक, संवैधानिक और प्रशासनिक शाखाओं को समझने का प्रयास करेंगे। विकेन्द्रीकरण का प्रशासनिक दक्षता पर पड़ने वाले प्रभाव पर ज़ोर दिया जाएगा।

2.2 परवर्ती आधुनिकतावादी समीक्षा

परवर्ती आधुनिकतावादी समीक्षा शीर्ष से निम्न की ओर तकनीकी योजना प्रक्रियाओं पर तेजी से कम हो रही है। इसकी अपेक्षा यह सार्वजनिक नीति के द्वारा/माध्यम से प्राप्त स्वदेशी विचारों को शामिल करते हुए सार्वजनिक-भागीदारी योजना प्रक्रियाओं को आवश्यक मानती है। राज्य तथ्य/नियम के वापिस करने पर नए सार्वजनिक प्रबंध के अनुसार शासन को अधिक व्यापक आधार वाला, भागीदारी, और प्रतिनिधितात्मक बनाने के लिए तरीके खोजे जा रहे हैं। इसका उद्देश्य निजी सहयोगी क्षेत्र और अन्य नागरिक सामाजिक कार्य करने वाले जैसे हित समूह, दबाव समूह, ग़ैर-सरकारी संगठनों और सामुदायिक आधारित संगठनों को शासन के मामलों में शामिल करने के द्वारा सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं के प्रावधानों पर सरकारी एकाधिकार के विकल्प उत्पन्न करना है (बहुवादी आदेश")।

"परवर्ती आधुनिक" विचारधारा के अनुसार इसका उद्देश्य आधुनिक राष्ट्र राज्य के चरित्र को बहुवादी प्रतिनिधितात्मक बनाना जिसमें "एकात्मक" की सीमाओं से हटकर धर्म, भाषा, जाति आदि को शामिल करना, उन पर ज़ोर देना और उसे अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए नीति के प्रारूप में भी शामिल करना है। सार्वजनिक पसंद की समीक्षा के अनुसार ऐसे बहुमत निर्धारण प्रजातंत्र को नकारते हैं क्योंकि नीतियों की पसंदों में पूर्व निश्चित विकल्पों के अवसरवादी पसन्द के मूल्य पर एक विकल्प के पक्ष में समाज के लिए स्पष्ट और अस्पष्ट दोनों अर्थों में वास्तविक मूल्यों में रूपांतरित कर देते हैं। प्रभावित समूहों के राजनीतिक अलगाव, जिससे लोकतन्त्र कम प्रतिनिधितात्मक रह जाता है के अतिरिक्त नीति चयन और निर्णय लेना भी हल्का रहता है जिसके साथ निरंकुश चरित्र जुड़ा होता है जो "सार्वजनिक हित" के उद्देश्य को अस्पष्ट करता है जो कि सार्वजनिक नीति का मुख्य सिद्धान्त है। ऐसा शासन दक्ष नहीं होता क्योंकि यह राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी संदर्भों में सार्वजनिक हितों की स्पष्ट प्रक्रियाओं में सभी को शामिल करने के अर्थ में कम तर्कसंगत होता है।

विश्व बैंक की व्याख्याओं के अनुसार लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण अधिकारों के निम्न की तरफ हस्तांतरित करने की अपेक्षा अधिक परिणाम देता है। इसमें शासन की एक व्यवस्था आवश्यक है जिसमें नागरिकों को चुनावों, समस्या बैठकों और अन्य लोकतान्त्रिक साधनों के द्वारा स्थानीय सार्वजनिक कार्मिकों को जिम्मेदार ठहराने का अधिकार प्राप्त होता है। विकेन्द्रीकरण के लोकतान्त्रिक होने का अर्थ यह है कि कार्मिकों की स्थानीय जनता के प्रति जिम्मेदारी है। प्रभावशीलता के लिए विकेन्द्रीकरण (*प्रत्यायोजन, विकेन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकृत*) (*Delegation, deconcentration, decentralisation*) में किसी विचलन के लिए लोकप्रिय नियंत्रण अनिवार्य शर्त है (इसे मुख्य संकल्पनाओं में भी पढ़ा जा सकता है)।

व्यवस्था निर्धारण में शीर्ष निम्न से निम्न-शीर्ष परिवर्तन से विशिष्ट वर्गों के संस्थापित हितों को जो राज्य सत्ता के विनाश के माध्यम से पारंपरिक हितों को और प्रचलित असमानताओं को और अधिक प्रोत्साहित करते नष्ट करने की आशा की जाती है। यह कार्य उदासीन जनता विशेषतः निष्क्रिय पिछड़े वर्गों को सक्रियात्मक उपायों जैसे आरक्षण के माध्यम से सशक्त बनाता है। सामाजिक समूहों में अंतर्निहित साम्यवाद के संस्थात्मक रूप का अभिप्राय है सामाजिक पूँजी को संस्थात्मक रूप प्रदान करना। यह कार्य राज्य की तरफ से ग्राम सभा और ग़ैर-सरकारी संगठनों और कार्य समूहों को प्रेरित करके किया

जाता है जिसका उद्देश्य "हितों की आवाज उठाना तथा कार्मिकों को जनता के प्रति दायित्व को निश्चित करना है। सरकार के इस संरचनात्मक सुधार का "पुनः आविष्कृत सरकार" के रूप में उल्लेख किया जाता है (ऑसबॉर्न व गेब्लियर, 1992)।

वास्तविक लोकतन्त्र के लिए शासन "आर्थिक रूप से भी दक्ष" (Economically efficient) होना चाहिए अर्थात् करदाताओं का धन उपयुक्त रूप से व्यय हो और उसका पूरा हिसाब रखा जाए। आर्थिक निर्णयों के बारे में पारदर्शिता न केवल व्यावसायिक लेखा जाँच, नीति विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए हो अपितु उसे जनता की सूचना अथवा जानकारी के लिए भी होना चाहिए जिसका धन सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए व्यय किया जाता है। इस बात पर कोई ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है कि उनके पास (निकालने और आवाज उठाने) अपेक्षित दबाव बनाने के लिए विरोध प्रकट करने या दुर्भावना के घोर मामलों में अच्छी सेवाएँ प्राप्त करने के लिए "निकालने" के विकल्प अपनाने के अधिकार होने चाहिए। आर्थिक घाटे को नियंत्रण में रखने के उद्देश्य से सरकारी तंत्र को मितव्ययी होना चाहिए। यह तभी संभव है जब अन्य क्षेत्र जैसे निजी, नैगमिक तथा गैर-सरकारी क्षेत्र सार्वजनिक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण में शामिल किए जाएँ। विकेन्द्रीकरण को ऐसे बहुवादी शासन के सर्वोत्तम साधन के रूप में माना जाता है (इस चर्चा के उद्देश्य के लिए दक्षता को "सिमोनियन" अर्थात् न्यूनतम व्यय अधिकतम लाभ के संदर्भ में समझा जाता है)।

इसलिए उपरोक्त सभी विशेषताओं को शामिल करते हुए, सार्वजनिक स्वतंत्रता के महत्त्व के वैध उद्देश्य के रूप में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में सर्वाधिक उद्धृत किए जाने वाले तीन मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं:

- लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण विकास नीति को लोक हित के अधिक संवेदी बनाता है क्योंकि स्थानीय प्रतिनिधियों द्वारा उन लोगों के साथ सक्रिय रूप से भागीदारी करके समस्याओं को समझा तथा उठाया जा सकता है जिनकी आवश्यकताएँ पूरी करना आवश्यक है। पर्यावरण सुरक्षा और कानून तथा व्यवस्था ऐसे उभरते क्षेत्र हैं जहाँ स्थानीय संस्थाओं का योगदान महत्त्वपूर्ण होने की आशा है।

- यह शासन से सम्बन्धित मामलों में प्रायः वैसे ही उदासीन रहने वाले स्थानीय समुदायों को सशक्त बनाता है। इससे शासन कार्य निष्पादक/भागीदारी बनता है। नागरिक समाज के कार्यकर्त्ता प्रभावशाली ढंग से शासन की क्रमिक अवस्थाओं में सामाजिक सक्रियता, प्रतिनिधित्व या लॉबी दबाव की लोक हित याचिकाओं तथा अन्य तरीकों के माध्यम से लोक हितों के लिए आवाज उठाते हैं और दबाव बनाते हैं। यह प्रशासन को निर्धन वर्ग के द्वार पर अधिक नजदीक लाता है। यह प्रत्यक्ष और स्पष्ट जिम्मेदारी के कारण भी होता है और कार्मिकों तक आसानी से पहुँचा जा सकता है जिससे संगठनात्मक संस्कृति में सुधार होता है क्योंकि कार्मिकों को नागरिक समाज द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है।

- यह संसाधन प्रबंध में दक्षता को बढ़ाता है क्योंकि सामुदायिक स्वामित्व और पिछले अनुभव/स्वदेशी ज्ञान पर आधारित स्थानीय नई प्रबंधन नीतियों के उपयोग से पर्याप्त अपव्यय होने से बचा जाता है।

उपरोक्त विशेषताओं का इस इकाई के अगले भागों में गहन विश्लेषण किया जाएगा। यहाँ पर यह कहना पर्याप्त है कि लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण समाजशास्त्र में विद्वानों और इसका उपयोग करने वालों के लिए उत्साही प्रस्ताव इस प्रकार प्रस्तुत कर रहा है कि यह अच्छे संस्थात्मक और लोकतन्त्र के आधार के बारे में व्यापक सकारात्मक अपेक्षाएँ उत्पन्न करता है। यह अधिकारों के संभावित दुरुपयोग या दूसरे रूप में केन्द्र और राज्य कार्यकारी अधिकारियों के निरंकुश व्यवहार की तुलना में अधिक सुचारु सेवा प्रदान करता है।

2.3 चयन का राजनीतिक परिवेश

सार्वजनिक चयन सिद्धान्तवादी ऐसी विकेन्द्रित राजनीतिक-प्रशासनिक संरचना का समर्थन करते हैं जहाँ अत्यधिक असंतुष्टि के मामले में लोग अनौपचारिक रूप (टेर्बोट ....) से अपनी नाराजगी दिखा सकते हैं या भिन्न कार्यक्षेत्रों की तलाश कर सकते हैं जहाँ सेवाएँ अपेक्षाकृत किफायती और/या अधिक अच्छी हों। तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाएँ जो अधिकांशतः विनियमित या व्यापक रूप से सरकार के नियंत्रण में रहती हैं, में सरकारी कर्मचारी किरायेदारी अवसरों/व्यवहार के लिए बहाने बना देते हैं जिससे लोगों के हितों के साथ समझौता करना पड़ता है क्योंकि लोगों को प्रशासन से प्रश्न करने या भूल/गलती के लिए जिम्मेदारी ठहराने की जानकारी/सूचना नहीं होती। क्रेग जॉनसन (2003) के अनुसार विकेन्द्रीकरण लोगों की तरफ से आत्म सहायता के लिए राजनीतिक अंतराल उत्पन्न करने के द्वारा चयन का ऐसा राजनीतिक परिवेश बना सकता है जो स्थानीय प्रयोक्ता समूहों, सामुदायिक अभिकरणों को अधिकार हस्तांतरण के माध्यम से प्रेरित कर सकता है, नागरिक समाज को सक्रिय कर सकता है और सरकार तथा स्थानीय स्तर पर कार्यरत नागरिक समाज अभिकरणों के बीच रचनात्मक अंतरपृष्ठीय सहक्रिया के अवसर उत्पन्न कर सकता है, "निकालने" और "अधिकार उठाने" विकल्पों के रूप में कुछ संभावनाओं की नीचे व्याख्या की जा रही है।

निकलने के विकल्प

के. वी. सुन्दरम बहुवादी संस्थात्मक प्रबंधों के विकास का स्थानीय स्तर पर स्वैच्छिक समूहों के समेकन और एकीकरण को बाध्यकारी और समूह के हितों को प्रोत्साहित करने के लिए स्वैच्छिक सहयोग और हितों के संकलन के द्वारा पूर्वानुमान लगाते हैं। ये प्रयोक्ता/हित समूह पारंपरिक स्वदेशी संस्थाएँ हो सकती हैं जिन्हें निर्वाचित संस्थाओं के आधार के चारों ओर पुनः सशक्त करने की आवश्यकता पड़ेगी। इन बहुवादी या ग़ैर-केन्द्रीय संस्थाओं से सामूहिक कार्यवाही के लिए साधनों के रूप में कार्य करते हुए संपूर्ण कार्य क्षेत्र में कार्य करने की अपेक्षा की जाती है जिसमें स्थानीय सीमा में विकास और रखरखाव का कार्य शामिल किया जाता है। उदाहरण के लिए आम संपत्ति संसाधन जैसे जल संरक्षण प्रणालियाँ तथा ऋण प्रदान करने वाली समितियाँ तथा आत्म सहायता पर आधारित विभिन्न जनसुविधाएँ प्रदान करना। वे प्राप्तकर्त्ता प्रणालियाँ भी हो सकती हैं (प्रयोक्ता समूह) जो लक्ष्य समूह को लाभ वितरण में सरकार की वितरण व्यवस्था में परस्पर क्रिया से सरकार के साथ संपर्क रखते हैं। ये विशेष कार्य समूह भी हो सकते हैं जो स्थानीय प्रशासन के संरक्षण में सड़कों, जलपूर्ति, सिंचाई, सामुदायिक भवनों और सिंचाई व्यवस्थाओं (स्वदेशी संस्थाएँ) जैसी कुछ लघु आधारभूत सुविधाओं (Infrastructures) का संचालन और रखरखाव करने वाले होते हैं। इससे उन पारंपरिक आधारभूत सुविधाओं को पुनर्जीवित करने में सहायता मिलेगी जो विकास योजनाओं में ज़ोर देने के अभाव में निष्क्रिय थीं और यह स्थायी स्थानीय आधारभूत सुविधाएँ बन सकती थीं। इसके लिए प्रशासन की तरफ से प्रेरक मध्यस्थता की आवश्यकता होगी जिसके लिए साम्यवादी सम्बन्धों में निहित सामाजिक संपत्ति को संस्थात्मक बनाने के गहन प्रयास करने होंगे। सुन्दरम् के अनुसार आधारभूत सुविधाएँ और अन्य प्रकार के सार्वजनिक मदों के संभावित लाभ प्राप्तकर्त्ताओं को योग्य बनाते हैं ताकि वे स्वयं को बहुवादी सीमित उद्देश्यीय कार्यात्मक समूह में संगठित कर सकें जिसमें सीमित सरकारी अधिकार का सहयोग विकास आयोजना की कार्यसूची में सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए। अनुसंधानों से पता चलता है कि ऐसे संगठन दक्षता से कार्य करते हैं, भ्रष्टाचार को नियंत्रित करते हैं तथा काफी किफायती होते हैं जैसे छत्तीस मौज (36 गाँव) में एक किसान ने 25,000 लोगों को शामिल करते हुए 54 गाँवों में सिंचाई प्रणाली का प्रबंध किया। शिक्षाशास्त्रियों विशेषतः नए जन-प्रबंधन समर्थकों और जनविकल्प सिद्धान्तवादियों ने व्यापक सुझाव दिया कि समुदायों में अंतर्निहित सामाजिक पूँजी को संस्थात्मक बनाने में सरकारी कार्य प्रेरक का होना चाहिए। ये समुदाय कलाकारों, व्यापारियों, किसानों, सामाजिक कार्य समूहों तथा अन्य समूहों के भी

हो सकते हैं जो संपूर्ण स्थानिक रूपरेखा की ठेकेदारी कार्य प्रणाली स्वरूप में उत्पादक कार्यों में ऐच्छिक रूप से संगठित हुए हों।

इसका पूरा समर्थन किया जाता है कि प्राकृतिक जल बहाव के आधार पर भूमि और जल प्रबंध की बुनियादी संकल्पना को अपनाना चाहिए और जहाँ कहीं आवश्यक हो विद्यमान जिला/खण्ड सीमाओं को प्राकृतिक जल प्रवाहों या प्रवाह समूहों को शामिल करने और समायोजित करने के लिए उसी के अनुसार पुनः व्यवस्थित किया जा सकता है।" यह लचीलापन स्थानीय शासन को प्रभावी ढंग से संस्थात्मक बनाने पर ही किया जा सकता है। सामान्य (कॉमन) या खेतीविहीन भूमि, बंजर भूमि दर्रे, नदी तलों के अतिरिक्त स्थानीय चरागाह और गोचरभूमि की स्थानीय देखभाल और प्रबंधन संभव हो तो प्राकृतिक भौतिक भौगोलिक या स्थान विशेष इकाई के जिस क्षेत्र पर जल प्रवाह बन सके उस क्षेत्र के आधार पर कहाँ की पंचायत, पंचायत मंडल या पंचायत समिति के अधीन रखा जा सकता है (हूजा, 1986)।

स्थानीय संसाधन प्रयोक्ता समूहों (प्रत्यायोजन या निजीकरण के माध्यम से) की स्थापना और सशक्तिकरण से पद्धति में ऐसे सुधार हो सकते हैं जिससे स्थानीय लोग प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन और उपयोग कर सकते हैं। स्थानीय ऋण अभिकरणों की कार्य प्रणाली दर्शाती है कि लाभ प्राप्तकर्त्ता की पहचान अपेक्षा के अनुसार काफी चीजें छोड़ देती है। यदि लक्ष्य आबादी तक नीतियों के लाभ पहुँचाने हैं तो इस प्रक्रिया को पंचायतों के माध्यम से प्रभावी बनाना होगा (भट्टाचार्य, दत्ता, 1991)।

सार्वजनिक अभिकरणों और स्थानीय संसाधन प्रयोक्ताओं के बीच सहभागिता सकारात्मक सामाजिक पूँजी पर आधारित सहयोगी संस्थात्मक प्रबंध उत्पन्न कर सकती है जिनमें नागरिक और सरकारी कार्मिक वस्तुएँ जुटाने के लिए सहयोग कर सकते हैं अन्यथा वे चीजें जुटाई नहीं जा सकती (यदि अलग-अलग कार्य करते तो) इसके उल्लेखनीय उदाहरण होंगे संयुक्त वानिकी प्रबंध, मत्स्य पालन सहप्रबंध और भागीदारी जल प्रवांह प्रबंधन (जॉनसन, 2003)।

अधिकार विकल्प

चीन और नाइजीरिया में जनता की भागीदारी से सरकारी कार्मिकों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है (मीनाक्षी सुंदरम्, 1999)। बोलीविया, होंडर्स, भारत (कर्नाटक), माली, यूक्रेन और फिलीपीन्स के अनुभवों से पता लगता है कि विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में नागरिक सामाजिक संगठन ठोस जिम्मेदारी तय करने में सफल रहे हैं। व्यापक जन भागीदारी होने से सरकारी कार्मिकों ने अधिक औपचारिक और अनौपचारिक जिम्मेदारी/संवेदनशीलता के मानदण्डों के अनुसार कार्य किया (ब्लेयर, 2000)।

क्रैज जॉनसन (2003) स्थानीय भागीदारी के अन्य सामाजिक और आर्थिक लाभों का वर्णन करता है। लोकतान्त्रिक रूप से निर्वाचित स्थानीय संस्थाओं में भागीदारी से स्थानीय लोगों में आत्म सम्मान की भावना आती है जिससे जातीय असमानता पर आधारित पहचान बननी कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी से स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं की सदस्यता के माध्यम से कला/शिल्पों जैसे लेखों को रखना, नेतृत्व आदि में सुधार होता है जिनका कहीं भी उपयोग किया जा सकता है।

आर्थिक उदारीकरण अनेक अवसर प्रस्तुत कर रहा है जिनको ग्रामीण भारत में समाहित किया जाना है। अमर्त्य सेन (1990) की प्रौद्योगिकी लागू करने के बाद अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य और रेलों, सड़कों, अच्छी कानून व्यवस्था के माध्यम से श्रेष्ठ सम्बन्धों के द्वारा लोगों के लिए अधिक अधिकार उत्पन्न करने होंगे और आगे विकास के लिए ये आवश्यक हैं। भारत व चीन तथा दक्षिण एशिया की स्थितियों में अंतर यह है कि दक्षिण एशिया ने मानव संसाधन विकास के संदर्भ में अपेक्षित आवश्यकताएँ प्राप्त करने के बाद ही ये नीतियाँ आरंभ की हैं। इस प्रकार इन देशों में उदारीकृत सार्वभौमिक विश्व में अवसरों

का लाभ उठाने के लिए मानव पूँजी अधिक अच्छी तरह से तैयार है। जबकि भारतीय लोग क्षमता की हानि से पीड़ित हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और कानून व्यवस्था में सुधार करने, यह देखने कि अध्यापक सही पढ़ाएँ, सरकारी स्वास्थ्य कार्मिक अपने कर्त्तव्य का सही पालन करें और पुलिस बल अच्छी तरह से प्रशिक्षित हों की अपेक्षा सरकार निरुद्देश्य धन नष्ट कर रही है। यदि पंचायतों को अध्यापकों और स्वास्थ्य कार्मिकों को नियुक्त करने, पद से हटाने तथा अनुपस्थित व्यक्तियों को अनुशासित करने के अधिकार प्रदान किए जाएँ तो ग्रामीण क्षेत्र भी सशक्त हो सकता है। आवश्यक संरचनात्मक सुधार किए बिना व्यय में वृद्धि करने से न तो निपुणता में वृद्धि होगी और न ही सशक्तिकरण होने की संभावना है।

2.4 संवैधानिक आयाम

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत सातवीं अनुसूची में स्थानीय सरकार विषय का उल्लेख किया गया है। स्थानीय सरकार के विधान राज्यों के लिए आरक्षित हैं। इसमें व्यापक उल्लेख है और स्थानीय सरकार के सम्बन्ध में कानून बनाने के लिए राज्य विधानमंडलों को अधिकार प्रदान किए गए हैं, कहने का अभिप्राय यह है कि स्थानीय स्वशासन या ग्रामीण प्रशासन के उद्देश्य के लिए नगर परिषदों, सुधार न्यासों, जिला बोर्डों, खनिज उद्योग पुनर्वास प्राधिकरणों और अन्य स्थानीय प्राधिकरणों की संरचना के अधिकार प्रदान किए गए हैं। राज्य सरकार अपनी तरह ही स्थानीय प्राधिकरणों को कराधान अधिकारों सहित अन्य अधिकार भी प्रदान कर सकती है। इसमें राज्य विधान पर राष्ट्रपति द्वारा निषेध करने का एक ही संवैधानिक प्रावधान है जो राज्यपाल द्वारा सिफारिश करने पर किया जा सकता है। उदाहरणार्थ मध्य प्रदेश विधान के संदर्भ में निषेधाकार का उपयोग किया गया था। इसमें जिला परिषद की सदस्यता पूरी तरह सरकार द्वारा नामित की जानी थी और पंचायतों के लिए उन्हें मतदान का अधिकार नहीं प्रदान किया गया था। बाद में विधेयक को अधिक लोकतान्त्रिक मानदण्डों के अनुसार बनाया गया (वाजपेयी, 1995)। इस संदर्भ में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों का उल्लेख करना भी महत्त्वपूर्ण है जोकि कुछ गाँधीवादी विशिष्ट सिद्धान्तों को निरूपित करते हैं। संविधान के 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40, 46, 47 व 48ए से प्रेरित हैं।

अनुच्छेद 40 से ग्राम पंचायतों के गठन का उल्लेख किया गया है। इसमें वचनबद्धता है कि "राज्य ग्राम पंचायतें गठित करने और उन्हें स्वशासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक अधिकार और शक्तियाँ प्रदान करने के लिए कदम उठाएगा।

अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य कमज़ोर वर्गों के शैक्षिक एवं आर्थिक हितों को बढ़ावा देने का वर्णन किया गया है। अनुच्छेद 47 राज्य की अपने लोगों के पोषण और जीवन स्तर बढ़ाने और अपने मुख्य कर्त्तव्यों में से जनस्वास्थ्य में सुधार तथा विशेषतः गायों, बछड़ों और अन्य दुधारू तथा सूखे पशुओं की नस्ल सुधारने एवं उनका वध निषेध करने के लिए कुछ कदम उठाने का वर्णन करता है।

अनुच्छेद 48 के अनुसार राज्य को आधुनिक और वैज्ञानिक आधार पर कृषि और पशुपालन करने के लिए प्रयास करने का कर्त्तव्य सौंपा गया है।

अनुच्छेद 48क वर्णन करता है कि राज्य देश का वातावरण सुरक्षित रखने और सुधारने का तथा जंगलों व जंगली जीवों की रक्षा के लिए प्रयास करेगा। इस उद्देश्य के लिए निम्न स्तर पर नीति बनाने और स्थानीय प्रशासन के लिए अधिकार और शक्तियों के प्रत्यायोजन के लिए स्थानीय स्वशासन अथवा स्थानीय सरकार उपयुक्त स्तर मानी गई है।

संवैधानिक स्थिति के लिए प्रयास

पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति प्रदान करने का आंदोलन 1985-1992 की अवधि में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी द्वारा दी गई प्रेरणा से विशेष रूप से तीव्र हुआ। दिसम्बर 1987 से जून 1988 के बीच देश के विभिन्न स्थानों पर जिलाधीशों और समाहर्ताओं की संवेदनशील प्रशासन के व्यापक सिद्धान्त पर पाँच कार्यशालाएँ आयोजित की गई। इन प्रयासों से उत्पन्न व्यापक सर्वसम्मति यह थी कि स्थानीय स्तर पर योजना एवं विकास के संवेदनशील साधनों के रूप में इन संस्थाओं को विकसित करने के लिए संवैधानिक वैधता के साथ लोकतान्त्रिक संरचना का होना आवश्यक था। यह निम्न स्तर पर नीति की योजना निर्माण के लिए आवश्यक था जो प्रतिनिधितात्मक लोकतंत्र का निश्चित लक्ष्य था। कुछ समय से देखा जा रहा था कि ग्रामीण और शहरी स्थानीय संस्थाएँ दक्षता से कार्य नहीं कर सकती थीं। पूरे देश में उनकी प्रगति विखंडित और असमान थी; संस्थात्मक संरचना, अधिकार और कार्य व संसाधनों के संदर्भ में समानता का अभाव था। राज्य की तरफ से राजनीतिक उदासीनता जैसी राजनीतिक और प्रशासनिक बाधाएँ भी थीं। अधिकार और संसाधनों के बँटवारे को लेकर भी नौकरशाही अनिच्छुक थी जिसे आंशिक रूप से प्रतिनिधितात्मक लोकतंत्र के साधनों के रूप में स्थानीय संस्थाओं की दक्षता और वैधता के बारे में प्रशासनिक क्षेत्रों में तथा मुख्यतः राष्ट्र निर्माण के लिए कार्य करने वालों के साधनों में विश्वास के अभाव के कारण प्रस्तुत किया जा सकता था। अतः अनियमित चुनावों, धन का अभाव, निरन्तर प्रतिस्थापनों तथा नौकरशाही के आधिपत्य ने आधारभूत स्तर अथवा बुनियादी स्तर पर स्थानीय स्वशासन के प्रयत्नों को निरंतर निष्फल कर दिया था। यह अनुभव किया गया था कि यह सम्मान के अभाव और संवैधानिक गारंटी न होने के कारण भी है। अतः यह स्वीकार किया गया था कि समय पर चुनाव कराने, आवधिक और उपयुक्त धन प्रदान करने, बार-बार संस्था भंग करने से बचने के लिए तथा महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील स्थानीय संस्थाओं की स्थिति सुनिश्चित करने के लिए संस्थात्मक योजना आदि बनाने के लिए संवैधानिक स्थिति आवश्यक थीं। पंचायती राज संस्थाओं के मुकाबले में राष्ट्र विकास के मुख्य अभिकर्त्ता होने के रूप में अपने अधिकारों पर दीर्घकाल से ज़ोर देने वाली नौकरशाही के मुकाबले उन्हें दृढ़ अथवा मजबूत बनाने पर ज़ोर देने के लिए यह विशेष रूप से आवश्यक थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के बाद तथा 1970 के दशक में ग्रामीण विकास कार्यनीति में दृष्टिकोण स्थानांतरित होने के बाद इस कथन का महत्त्व काफी बढ़ गया था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम देश के कुछ चुने हुए खण्डों में आयोजित किया गया था। यह लोगों की सक्रिय भागीदारी के साथ एक महत्त्वाकांक्षी प्रयास था। इसका उद्देश्य गाँवों में आर्थिक और सामाजिक विकास करना था लेकिन वास्तविक उपलब्धि अनुमान से काफी कम थी। इसकी असफलता का मुख्य कारण लोगों की भागीदारी के लिए आह्वान में असफलता तथा प्रशासनिक तंत्र पर अत्यधिक निर्भरता थी जिसमें नीतियों की कार्य योजना में परिणत करने में विशेषज्ञता का अभाव पाया गया। क्रमिक स्थानीय स्तरों पर सहयोगी प्रयासों की संस्थात्मककरण पर ठोस उपायों के माध्यम से आधारभूत लोकतन्त्र की स्थापना करना'कार्यान्वयन के लिए लाभप्रद था। अतः ऐसे भावी प्रयासों के लिए इसे सफलता की पूर्ण शर्त माना गया। इस बात पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम में अपेक्षित सफलता न मिलने के कारणों का पता लगाने के लिए बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में गठित अध्ययन दल अथवा टॉस्क फोर्स द्वारा काफी बल दिया था। बलवंत राय मेहता द्वारा एक तीन स्तरीय स्वरूप का सुझाव दिया गया जिसे राज्यों ने तुरंत स्वीकार किया और लागू किया। फिर भी अनुमान से वास्तवकिता काफी दूर थी। स्थानीय राजनीतिज्ञों के बढ़ते प्रभाव का राज्य के विधायकों और नौकरशाही द्वारा प्रतिरोध किया गया जिन्होंने विकास दायित्वों के विभाजन को पसंद नहीं किया था। पंचायती राज संस्थाओं में 1960 के दशक में कमी आरंभ हो गई। बार-बार प्रतिस्थापनों, अनियमित चुनावों तथा राज्य सरकार की तरफ से प्रायः लापरवाही आम बात हो गई। इसी बीच कृषि में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी के उपयोग से उपजाऊ क्षेत्रों में उत्पादकता बढ़ाने के लिए स्वशासन के दीर्घकालीन उद्देश्य के दृष्टिकोण ग्रामीण विकास कार्यनीति में प्रतिमानिक परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था। 1960 के

दशक में भारत में गंभीर खाद्य संकट से निपटने के लिए परिवर्तन पर ज़ोर देना आवश्यक था। तात्कालिक चिंता को दूर करने के लिए भागीदारी लोकतन्त्र के उद्देश्य को कुछ समय के लिए छोड़ दिया गया ताकि अधिक अन्न उपजाओ अभियान को तेजी से चलाया जा सके जो अंत में "हरित क्रांति" की घोषणा में परिणत हुआ। ज़ोर देने वाले तथ्य में परिवर्तन करने से उन अमीर जमींदारों के पक्ष में सम्बन्धित नीति में भी परिवर्तन हुआ जो आधुनिक मंहगी कृषि तकनीकों को लागू कर अधिक खाद्यान्न उत्पादित कर सकते थे, जो निर्धन भूमिहीन किसानों की पहुँच से दूर थीं और अधिक उपजाऊ क्षेत्रों (उपजाऊ भूमि, अच्छी वर्षा वाले क्षेत्र आदि) के अनुकूल थी जो अपेक्षित मात्रा में फसल उत्पादन कर सकते थे अतः संतुलित क्षेत्रीय विकास पर आवश्यक समझौते का प्रबंध करती थी। बाद में ऐसे असंतुलनों को दूर करने के लिए जो आकस्मिक नीति परिवर्तन से उत्पन्न हुए थे, ऐसे छोटे और भूमिहीन किसानों के लाभार्थ उपरोक्त क्षेत्रीय विकास योजनाएँ आरंभ की गईं जो पहली विचारधारा के झटके से छूट गए थे। ये योजनाएँ स्थानीय संस्थाओं द्वारा नहीं अपितु राज्यतंत्र की नौकरशाही के द्वारा ही लागू की जा सकती थी। अर्थव्यवस्था की स्थिति एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP), राष्ट्रीय ग्रामीण कार्यक्रम (NREP) और (RLEGP) (जो बाद में (JRY) में संघटित हो गए) जैसी योजनाओं के माध्यम से भागीदारी बुनियादी लोकतन्त्र से स्थानांतरित होकर क्षेत्रवार क्षेत्रीय विकास विचारधारा वाली हो गई जो मुख्यतः नौकरशाही तंत्र के माध्यम से लागू की जा सकती थी (माहेश्वरी)।

इस प्रकार, दृष्टिकोण को बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट के कारण उत्पन्न पंचायती राज संस्थाओं से पुनः समय परीक्षित नौकरशाही पर स्थानांतरित करने का निर्णय लिया, जिसे प्रचलित हालातों और चीजों की विद्यमान योजना में विकास के मुख्य अभिकर्त्ता के रूप में अपने अधिकारों पर ज़ोर देने का पुनः अवसर मिल गया था। पंचायती राज संस्थाओं की कम सफलता ने इनकी स्थिति को और मजबूत बना दिया था।

इससे विद्वान आवश्यक पूर्वापेक्षाओं के अभाव में सामुदायिक विकास कार्यक्रम आरंभ करने की समझदारी पर प्रश्न उठाने लगे। सामुदायिक विकास कार्यक्रम संयुक्त राज्य अमेरिका से प्राप्त आर्थिक सहायता से ग्रामीण विकास के लिए स्वतंत्र भारत का प्रथम महत्त्वाकांक्षी प्रयास था। विकास के प्रयत्न के केन्द्रीय बिन्दु की अवरूद्ध होने के कारण आलोचना हुई। फिर भी प्रयास को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। असफलता का मुख्य कारण प्रशिक्षित कार्मिकों का अभाव, समन्वय और पंचायती राज संस्थाओं व नौकरशाही के बीच अधिकार संघर्ष सहित प्रशासनिक बाधाओं के साथ अपेक्षित अनुमान में लोगों की भागीदारी के आह्वान में असफलता को समझा गया।

विकसित राज्यों में लम्बी विकासात्मक अवधि द्वारा प्राप्त विकास के फल पर उदीयमान लोकतंत्र की ओर से सजग दृष्टि के द्वारा अविश्वसनीय थोड़े से समय में अधिकार करने को लेकर अधूरे प्रयास के रूप में आलोचना हुई।

तबसे विकसित राज्यों द्वारा उदीयमान देशों को दी गई झूठी प्रेरणाओं को भी विकास की भ्रांतिपूर्ण संकल्पनाओं के रूप में टाल दिया जाता था। इससे विकास प्रशासन में उल्लेखनीय स्थानांतरण अंतिम रूपरेखा बन गई। जिसके द्वारा विकास पैकेज तैयार किए गए थे और विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों को भेजे गए थे। इनका उद्देश्य इनमें निहित विकास को मिलाना अथवा उनको निर्देशित करना था। इसे सिद्धान्ततः दूर से ही नकार दिया गया तथा समय रहते उस पर्यावरणीय विचारधारा द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया जो सांस्कृतिक, सामाजिक-आर्थिक चर विशेषतः ग्रामीण/क्षेत्रीय चर जो क्षेत्र में सार्वजनिक नीति के परिवेश सम्बन्धी संरचना का निर्माण करते हैं जैसे घटकों से निर्मित पर्यावरणीय संदर्भ का समर्थन करती है। ये घटक संचालन सफलता या अन्य किसी मापदण्ड का निर्णय करते हैं। सैद्धान्तिक समाधान प्रभावी नहीं होते क्योंकि नीतियाँ प्रकृति में जातीय होती हैं और जिन संदर्भों और अपेक्षाओं में उन्हें लागू किया जाता है उस संदर्भ में केवल कार्यान्वयन प्रक्रिया में ही उनकी विशेषताओं का पता लगता है।

इसके बाद बुनियादी स्तरों पर लोकतन्त्र ने तीन स्तरीय संस्थात्मक संरचना प्रस्तुत की। स्थानीय स्तर की ये संस्थाएँ गाँव स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा जिला सतर पर जिला परिषदों की रचना की गई। तीनों स्तरों में स्थानीय आवश्यकताओं की आवाज उठाने तथा उन्हें नीति में विषय बनाने तथा सामुदायिक विकास कार्यक्रम के चरण के बाद नौकरशाही की तरफ झुके अधिकार संतुलन को ठीक करने के लिए प्रशासन में लोगों की भागीदारी पर ज़ोर दिया गया। जनता पार्टी की सरकार के केन्द्र में सत्तासीन होने पर उसने अशोक मेहता समिति का गठन किया और इसके लिए नए सिरे से प्रयास किए गए। रिपोर्ट में दीर्घकालीन अस्तित्व के लिए पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति प्रदान करने की आवश्यकता का स्पष्ट वर्णन किया गया। इसके बाद यह विषय राजनीतिक उठा-पठक में खो गया। स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी के अधीन कांग्रेस सरकार ने 64वें और 65वें संविधान संशोधन अधिनियमों के रूप में इसका मसौदा विधान प्रस्तुत किया। राज्य सभा में इसके कड़े विरोध के कारण यह प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया। इसे ग़ैर-कांग्रेस शासित राज्यों की स्थानीय संस्थाओं में लोकतन्त्र समाप्त करने के घातक प्रयास के रूप में आंका गया। इसके बाद दिसम्बर 1989 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी की सरकार के केन्द्र में सत्ता में आने पर एक नया प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया वह भी लोकसभा भंग होने के कारण रद्द हो गया। 1991 के नए चुनावों में पी.वी. नरसिम्हाराव की अध्यक्षता में कांग्रेस पुनः सत्ता में आई। इसके बाद 73वें और 74वें संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किए गए और दिसम्बर 1992 में इन विधेयकों को पारित किया गया (वाजपेयी, 1995)।

अब स्थानीय संस्थाएँ तीन-स्तरीय विकास अभिकरणों के रूप में गठित की गई हैं। नई विशेषता यह है कि जिला योजना समितियाँ निम्नतम स्तर पर विकास योजना को संस्थात्मक बनाएगी। क्षेत्र आधारित स्थानीय योजना की आवश्यकता जो कुछ समय से अभिव्यक्त की जा रही थी अब पूरी की गई। नई संस्थाओं के द्वारा संघटित ग्रामीण शहरी योजना की आवश्यकता भी पूरी की गई है। कार्यों में उद्देश्य स्पष्ट है। स्थानीय संस्थाओं को सामाजिक-आर्थिक योजना के लिए विकसित अभिकरण बनाना होगा जो अब तक योजना कार्यान्वयन के लिए केवल उदासीन साधन बनी हुई थी (दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07)।

2.5 प्रशासनिक तर्क

विकेन्द्रीकरण से स्थानीय स्तर पर अव्यवस्थित प्रशासन की उपनिवेशी अनिश्चितता को दूर करने की आशा की जाती है। चूँकि अंग्रेजों के राज में प्रशासन अत्यधिक अभिकेन्द्रित था। अतः स्थानीय प्रशासन विकसित नहीं हो सका। योजना कार्यान्वयन के लिए तदर्थ संस्थाओं पर विश्वास किया गया जिसने एक समय में जिले में काफी अव्यवस्थित स्थिति उत्पन्न कर दी। स्थानीय स्वशासन की स्थापना से स्थानीय स्तर पर प्रशासनिक तंत्र को तर्कसंगत बनाने की आशा की जाती है क्योंकि इससे ऐसे कई अभिकरण असंगत हो जाएँगें। इन्हें पंचायती राज योजना को सहज बनाने और विकास कार्यक्रमों को लागू करने के लिए आवश्यकतानुसार तकनीकी जानकारी और धन प्रदान किया जाना चाहिए। वर्तमान में विकास नीति के कार्यान्वयन के रूप में विशेषज्ञ दक्षता भी बँटी हुई है क्योंकि ग्रामीण विकास विभाग क्षेत्राभिमुख है। कहने का अभिप्राय यह है कि कार्मिक अपनी विशेषज्ञताओं में अपेक्षित अंतर-क्षेत्रीय सम्बन्धों के साथ समन्वित स्थानिक विकास के व्यापक/गहन प्रभाव के लिए सम्बन्धित विशेषताओं के साथ वास्तविक एक क्षैतिज सम्बन्ध/तालमेल के बिना काम करते हैं। उदाहरण के लिए, भूमि संरक्षण, ऋण प्रदान करना और लघु सिंचाई कार्यों को पारस्परिक विषयों में संघटन आवश्यक होने पर भी क्षेत्र में अलग अनुभाग है और महत्त्वपूर्ण है कि सम्बन्धित विशेष क्षेत्रों में शामिल कार्मिकों में संघटन होना और अधिक अभीष्ट होता है। इससे क्षेत्रवार, क्षेत्रीय, उपक्षेत्रीय, जिला या निम्न स्तर पर विकास की ऐसी क्षेत्र इकाइयों में अपेक्षित विस्तार होगा जो विशेषज्ञों और तकनीशियनों के बहु-आयामी दलों के

नियंत्रण में संभाली जाती है। इसके अनुसार वित्तीय प्रशासन में कुछ संशोधन करना अभीष्ट होगा जैसे पहले की तरह विभाग के लिए नहीं अपितु एक एरियल इकाई के लिए बजट प्रावधान प्रदान करना जो एक जल प्रपात भी हो सकता है जैसा कि पहले कहा गया है या कोई प्रशासनिक व विकास इकाई भी हो सकती है। इसके साथ स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार एक कार्य से दूसरे कार्य में धन हस्तांतरित करने के लिए स्थानीय कार्मिक प्रमुख को पर्याप्त स्वायत्तता भी प्रत्यायोजित की जानी चाहिए।

2.6 विकेन्द्रीकरण पर वाद-विवाद

विकेन्द्रीकरण के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव मिश्रित है। स्थानीय, लोकतान्त्रिक रूप से निर्वाचित संस्थाओं को व्यापक अधिकार हस्तांतरण करने के बावजूद कोलाम्बिया, ब्राजील और फिलीपाइन्स में विकेन्द्रीकरण से गरीबी कम करने या क्षेत्रीय विसंगतियाँ दूर करने में मामूली उपलब्धि हुई लगती है। बोलिबीया और बांग्लादेश में अनुभव निराशाजनक है। जैसा कि क्रूक और स्विरिसन के देशों के बीच की गई तुलना (2001 : 52 जॉनसन में, 2005) में निष्कर्ष निकलता है:

"यह विचार है कि सरकार के विकेन्द्रीकरण और अधिक निर्धन समर्थक नीतियों के निर्माण या गरीबी उन्मूलन के मध्य प्रतिपाद्य या सामान्य सम्बन्धों के निष्कर्षों में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। यहाँ तक कि सर्वाधिक सफल विकेन्द्रीकरण स्वरूप भी क्षेत्रों में तथा क्षेत्र के अंदर दोनों में आर्थिक और राजनीतिक विसंगतियों को दूर नहीं कर सका। इसके बदले इसने ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक राजस्व बढ़ाने की समस्या को उजागर किया जिनमें आर्थिक बचत (और इस प्रकार कर योग्य राजस्व) प्रतीकात्मक रूप से कम है।"

इसलिए विकेन्द्रीकरण को विवाद रहित रामबाण के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। अपितु इसके पक्ष और प्रतिपक्ष के तर्कों का ध्यान करते हुए सूक्ष्म विश्लेषण किया जाना चाहिए। विश्व बैंक द्वारा संचालित अध्ययनों से पता लगता है कि विकेन्द्रीकरण में राजनीतिक अवसरवाद प्रायः प्रशासनिक विषयों पर वरीयता प्राप्त कर लेता है। वास्तव में, राजनीतिक लाभ ही विकेन्द्रीकरण के मूल्यांकन या निरंतर जारी रहने के लिए मूलाधार और मानदंडों की भी रचना करते हैं। यदि अल्पकालीन राजनीतिक लाभों के लिए अपेक्षित व्यापक सामुदायिक हित पूरे होते हैं और लोग पर्याप्त सक्रिय होते हैं तो विकेन्द्रीकरण रखा जा सकता है अन्यथा उसे समाप्त कर देना चाहिए। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि अधिकतर देश विद्यमान प्रशासनिक संरचना में कमजोरियों को प्रत्यक्ष रूप से दूर करने के स्थान पर दक्ष प्रबंधन के लिए विकेन्द्रीकरण का सहारा लेते हैं। अतः अधिकतर देशों में विकेन्द्रीकरण एक अप्रत्यक्ष सुधारात्मक प्रयास है (रोडोनेली, नेल्लिस, चीमा, 1984)। इसके अतिरिक्त सामान्यतः अच्छी शासन कार्यसूची के साथ विकेन्द्रीकरण एक ऐसी राजनीतिक परियोजना है जिसका उद्देश्य राज्य की वैधानिकता को रूपांतरित करने और नागरिकों एवं स्थानीय सरकार के बीच नया अनुबंध करने की अपेक्षा केन्द्र राज्य के अधिकार कम करने या श्रेष्ठ बनाने के तकनीकी साधन के प्रेरक के रूप में रहा है (हिकी व मोहन, 2003)।

उदाहरण के लिए अधिकतर एशियाई देशों में अभी भी स्थानीय सरकारें "वैकल्पिक मूल्यों, प्राथमिकताओं और आकांक्षाओं के उत्पादक के रूप में कार्य करने की अपेक्षा केन्द्र के नौकरशाही साधनों के रूप में कार्य करती हैं।" "केन्द्रीय सरकार के कार्मिक स्थानीय नेताओं को योजना के लिए स्थानीय आवश्यकताओं की आवाज उठाने वाले या स्थानीय संसाधनों को सक्रिय करने वालों की अपेक्षा केवल राष्ट्रीय नीतियों के लिए समर्थन के सूचनावाहक और प्रतिवक्ता के रूप में देखते हैं।" किसी क्षेत्र विशेष के कार्यक्रमों जैसे स्थानीय स्तरों पर लघु किसान विकास अभिकरण (SFDA) सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के बाद के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि विकास योजनाओं की सफलता के लिए स्थानीय

योजना और संसाधनों पर नियंत्रण होना एक अनिवार्य शर्त है। यद्यपि 1970 के दशक में सिंचाई के लिए ट्यूबबैल जैसी संपत्तियों की स्थापना के माध्यम से गरीब किसानों की आमदनी बढ़ाने में कुछ कार्यक्रम उचित रूप से सफल तो हुए लेकिन अध्ययनों से हमेशा पता लगता है कि भौतिक आधारभूत संरचनाओं के निर्माण में, तकनीकी सहायता प्रदान करने में या स्थानीय संस्थाओं को मजबूत करने में बहुत कम सफल थे। इसका कारण यह था कि अधिकतर वित्तीय वर्षों में प्रशिक्षित कार्मिकों के अभाव में लघु किसान विकास अभिकरण को आधे से भी कम धन आबंटित किया गया था। बार-बार कार्मिकों की अदला-बदली और स्थानीय कार्मिकों की नई प्रक्रिया या स्थानीय समस्याओं को दूर करने की अनिच्छा के कारण लघु किसान विकास अभिकरण भी पीड़ित था। उन्हें केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का प्रभावशाली ढंग से पालन करने में कठिनाई आती थी (रोंडिनेली, नेलिष, चीमा, 1984)। फिर विकेन्द्रीकरण भी एक अनुपूरक प्रबंध था जिसके द्वारा एक क्षेत्र में सफलता उसके अनुरूप दूसरे (सम्बन्धित) क्षेत्रों में सुधारों पर निर्भर करती थी। जैसा केरल के अनुभव ने प्रस्तुत किया कि पर्याप्त प्रशिक्षण और सहायता के अभाव में अत्यधिक धन का हस्तांतरण ऐसी स्थानीय संस्थाओं पर अत्यधिक भार डाल सकता है जिनके सदस्यों को अधिक और जटिल धन राशियाँ व्यय करने के संसाधनों और निपुणताओं की जानकारी नहीं होती।

हरिश (जॉनसन, 2000 में : 2003) ने भी दर्शाया है कि नौकरशाही वाले राज्य से सक्रिय बाहरी सहायता के अभाव में सामाजिक पूँजी और नागरिक समाज अप्रभावी होने की संभावना रहती है। सहायता के अभाव में स्थानीय सक्रियता केवल वाकपटुता में गायब हो जाती है। बाहरी सहायता की आवश्यकता राजनीतिक इच्छाशक्ति, संसाधनों के रूप में होती है क्योंकि शामिल भागीदारी में भी परिवहन और गतिशीलता की अन्य आवश्यकताओं की लागत आती है जो संसाधनों की उपलब्धता के अभाव में ये जारी नहीं रह सकती।

मीनाक्षी सुन्दरम् (जॉनसन में 1999, 2003) का तर्क है कि प्रभावी विकेन्द्रीकरण तीन अनिवार्य शर्तों के पूरा होने पर निर्भर करता है :

- सरकार में उच्च स्तरीय अधिकारियों की दृढ़ राजनीतिक प्रतिबद्धता;
- स्थानीय योजनाओं के निर्णय निर्माण और कार्यान्वयन में स्थानीय संस्था की अपेक्षित स्वायत्तता; और
- स्थानीय स्तर पर आंतरिक रूप से (अपने) जुटाए गए संसाधन।

इस प्रकार राजनीतिक इच्छाशक्ति से सीधे प्रवाहित होने वाली सक्रिय उत्प्रेरक मध्यस्थता के अभाव में विकेन्द्रीकरण निष्प्रभावी हो सकता है। वास्तव में भारत में स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की यह दयनीय अवस्था है और विश्व में कहीं भी विकेन्द्रीकरण प्रयासों की असफलता का यह मुख्य कारण है। अधिकारों और कार्यों का हस्तांतरित किए बिना और संसाधन पर अत्यधिक बंधनों के कारण स्थानीय संस्थाएँ योजनाओं को क्रियात्मक रूप नहीं प्रदान कर सकती।

2.7 सारांश

विकेन्द्रीकरण को आधुनिकोत्तर विचार के अनुसार लोकतन्त्र की आवश्यकता के रूप में देखा जाता है। प्रशासनिक के साथ इसकी राजनीतिक विशेषता है जो नीतियों के सार्थक होने के कारण वास्तविक आर्थिक उपलब्धि प्रदान करती है, नीति निर्माण प्रक्रिया अधिक लोकतान्त्रिक है जो लोगों में अच्छी अभिरूचि जागृत करती है। अच्छा सेवा वितरण होता है जिसे नीति की कार्यान्वयन प्रक्रिया की दक्षता के लिए बनाया जाता है। यद्यपि विश्व के विभिन्न भागों में लोकतंत्र के साथ किए गए विभिन्न प्रयोगों की मिश्रित सूचनाएँ है तो भी अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने में केन्द्रीय योजना की असफलता के कारण

दीर्घकालीन राजनीतिक व्यवस्था के रूप में इसकी व्यवहार्यता के संदर्भ में विकल्प बना हुआ है। नीति निर्माण में गहन सूचना निवेश की कमी के कारण नीतियों की असफलता पाई गई थी। इसलिए वांछित संरचनात्मक सुधार और इसके द्वारा आधारभूत स्तर पर विकास के लिए लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के द्वारा एक वैकल्पिक व्यवस्था की खोज की जा रही है।

स्वःशासन संस्थाओं की कार्य प्रणाली की असफलता के दो प्रसिद्ध कारण वित्तीय संसाधनों पर नियंत्रण का अभाव और स्थानीय स्तर पर दृढ़ और योग्य कार्यकारी तंत्र का अभाव हैं। विकेन्द्रीकरण से स्थानीय संस्थाओं की तरफ ध्यान केन्द्रित कर व्यवस्था की खामियों का सुधार करने की आशा की जाती है। अधिकारों और कार्यों के हस्तांतरण से प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों (पहलुओं) में स्थानीय प्रशासन और स्वयंसेवी समूहों के प्रशिक्षण के द्वारा अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने की आशा की जाती है जो अधिकाल में उन्हें शिक्षा और सशक्तिकरण का मार्गदर्शन करती है।

नीति कार्यान्वयन प्रक्रिया में अति व्याप्ति, दोहरे कार्य और भ्रमित दायित्व के दोष भी स्थानीय स्तर पर दक्ष प्रशासनिक व्यवस्था में कमी के कारण माने गए हैं। इन दोषों को भी स्थानीय प्रशासन को चुस्त करके ठीक किया जा सकता है। प्रस्तावित उपाय के संभावित सामाजिक आर्थिक लाभों को भूतकाल की नीति असफलता को दूर करने के महत्त्वपूर्ण साधनों के रूप में देखा जाता है। अंत में यह और कहना सार्थक होगा कि विकेन्द्रीकरण न तो रामबाण है और न ही इसे केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीकरण दो पृथक व्यवस्थाओं के रूप में समझना चाहिए। प्रत्येक देश को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने अनुकूल केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीकरण का मिश्रित रूप विकसित करना होगा।

2.8 मुख्य अवधारणाएँ

सामुदायिक विकास कार्यक्रम (Community Development Programme; CDP) : ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में लोकप्रिय प्रयास को शामिल करने के विचार से 2 अक्तूबर 1952 को यह कार्यक्रम आरंभ किया गया था। यह लोगों की भागीदारी के साथ विकास के युग में आरंभ हुआ था। इसके बाद 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा आरंभ हुई जिसने विकास की इकाइयों के रूप में सामुदायिक विकास खंड बनाए। आरंभ में पर्याप्त लोकप्रिय उत्साह था जिससे सड़कों, औषधालयों, विद्यालयों आदि का निर्माण हुआ लेकिन 1950 के दशक की समाप्ति तक उत्साह समाप्त हो गया था। ग्रामीण विकास का यह पहला चरण था जिसकी अवधि 1952–1960 तक थी।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के पश्चात् चरण II (1960-70) में ध्यान अधिक खाद्यान्न पैदा करने पर केन्द्रित हो गया (हरित क्रान्ति)। जिससे क्षेत्रीय विकास और आमदनी वितरण में असमानता उत्पन्न हो गई जिससे 1970 के बाद में क्षेत्र विकास और लाभार्जकोन्मुखी कार्यक्रम आरंभ हुए।

अकेन्द्रीयकरण (De-concentration) : मुख्यालय/किसी केन्द्रीय मंत्रालय में अवरुद्ध कार्य से अधिकारों का केन्द्रीयकरण, नीति सूचना निवेश में तथ्यों की अस्पष्टता, संचालकों में भूमिका की अस्पष्टता, निर्णयों में विलम्ब तथा अन्य असंख्य रूपों में घटिया संभार तंत्र और अदक्षता उत्पन्न हो सकती है। अकेन्द्रीयकरण को केन्द्रीय मंत्रालय में ही क्षेत्र इकाइयों को अधिकारों और कार्यों के हस्तांतरण के लिए

अपनाया जाता है। इसे संगठन की अच्छी पहुँच और कार्य की प्रभावशीलता के लिए तथा प्रशासनिक मितव्ययता के रूप में अनुभव द्वारा सिद्ध किया जा चुका है।

हस्तांतरण (Devolution) : सरकार की ऐसी उप राष्ट्रीय इकाइयों को अधिकार और कार्य हस्तांतरित किए जाते हैं जो सौंपे गए कार्यों को पूरा करने के लिए या तो विद्यमान हो सकती हैं अथवा उन्हें क्रमिक स्तरों पर बनाया जा सकता है। हस्तांतरण विकेन्द्रीकरण का एक साधन/पद्धति है जिससे विकेन्द्रीकरण प्रभावित होता है।

प्रत्यायोजन (Delegation) : प्रत्यायोजन संगठन के अंदर और सरकारी अभिकरणों से बाहरी अभिकरणों में होता है (सरकार के साथ सहयोगी साझेदारी शामिल है) जिन्हें विशेष कार्य सौंपे जा सकते हैं। प्रत्यायोजन का अभिप्राय नियमित नौकरशाही संरचना से बाहर और केवल सरकार द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित संगठनों को विशिष्ट रूप से परिभाषित कार्य करने के लिए प्रबंधात्मक अधिकार प्रदान करना है। विकासशील देशों में दायित्वों को सार्वजनिक निगमों, क्षेत्रीय विकास अभिकरणों, विशिष्ट कार्य प्राधिकरणों, अर्ध स्वायत्त परियोजना कार्यान्वयन इकाइयों तथा अनेक प्रकार के परा-राजकीय संगठनों को प्रत्यायोजित किया जाता है। प्रत्यायोजन काफी समय से प्रशासनिक कानून के साथ उपयोग किया जाता है। संगठन के अंदर कार्य करने के लिए इसमें व्यापक स्वविवेकाधिकार के साथ कार्य अधीनस्थ कर्मियों को हस्तांतरित करना शामिल है। यद्यपि दायित्व कार्यकारी का होता है तो भी प्रत्यायोजन का कार्यान्वयन आंतरिक औपचारिक/अनौपचारिक साधनों के द्वारा किया जाता है। सौंपे गए प्रशासनिक कार्य करने वाले अधीनस्थ प्राधिकरण की तरफ से नीति को नष्ट करने या अतिक्रमण की इच्छा से अधिकारों के उल्लंघन का पता लगता है तो औपचारिक अभियोग आरंभ हो जाता है। प्रत्यायोजन परस्पर समर्थन, विश्वास और सामूहिक कार्य भावना से काफी उन्नत होता है। इसमें प्रशासनिक नैतिकता दायित्व पर बल दिया जाता है (स्रोतः विश्व बैंक के कार्य दस्तावेज़)।

इस प्रकार अधिकार प्रत्यायोजित किए जाते हैं, शक्ति हस्तांतरित की जाती है और कार्य का अकेन्द्रीयकरण किया जाता है। विकेन्द्रीकरण को सार्थक बनाने के लिए वांछित प्रभाव या यह कहें कि सार्थक विकेन्द्रीकरण के लिए उपरोक्त तथ्यों में सही सहसम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता है।

आधुनिक और आधुनिकोत्तर (Modern and Post Modern) : बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युक्तिसंगत और भौतिकवाद से मानवीय सरोकारों के साथ अधिक समायोजित संस्कृति की ओर निरंतर सुस्पष्ट परिवर्तन हुआ है। इनमें विषयों/सरोकारों की व्यापक सूची शामिल/निहित है जिसमें व्यवस्था और

अनुरूपता पर ज़ोर देने के स्थान पर लोकतन्त्र में बहुमत से लेकर अधिक प्रतिनिधितात्मकता कठोर वैज्ञानिकता से परे जीवन के पौराणिक व गुप्त पहलुओं के प्रति सम्मान, विकास में पर्यावरण सम्बन्धी सरोकारों पर अधिक बल दिया जाता है जो स्थाई विकास के विचार का सार है। इसके विकासशील समाजों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण निहितार्थ हैं क्योंकि जन नीति का बाहरी महत्त्व होता है इसका कारण यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्रायः सुझाव आते रहते हैं। इस प्रकार ग्रामीण विकास, शहरी योजना आदि आधुनिकोत्तर विषयों को प्रतिबिम्बित करेंगे।

लोक विकल्प (Public Choice) : लोक विकल्प आर्थिक परिप्रेक्ष्य से लोकतन्त्र में नया दृष्टिकोण है। अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र तथा अन्य समाजशास्त्रों जैसे समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के विद्वान सामूहिक गति विज्ञान के अध्ययन में शामिल हैं वे ऐसे विवेकपूर्ण विचारविमर्श में लगे हैं कि सामाजिक लाभ में वैयक्तिक और सामूहिक दोनों हितों को पूरा करने के लिए सामूहिक कार्यों को किस प्रकार लागू किया जाए। लोक विकल्प व्यवहार का अध्ययन लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं जैसे चुनाव, विकेन्द्रीकरण, और तदनुसार मतदान व्यवस्थाओं आदि के द्वारा करता है। इसके पीछे व्यापक लाभों के लिए उन्हें और अधिक सहायक बनाया जाए। जैसे लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं को और अधिक प्रतिनिधितात्मक और भागीदार बनाना ताकि लोकतन्त्र में सब शामिल हों जिससे यह वास्तविक रूप में लोकतान्त्रिक हो। सार्वजनिक सेवा प्रावधानों (सार्वजनिक वस्तुओं) में निजी और ग़ैर-सरकारी संगठनों से प्रतिस्पर्धा तथा शासन में पारदर्शिता और लोगों की पर्याप्त भागीदारी के अभाव के कारण वर्तमान में नौकरशाही पर किराया खाने वालों का और प्रभावशाली विशिष्ट वर्ग पर बहुमत के हितों का प्रतिनिधित्व करने का आरोप लगाया जाता है। अतः अधिकतर अवसरों पर जनता के लिए जो पारित किया जाता है वह किसी न किसी रूप में कुलीन तंत्र का प्रभाव होता है जिससे बहुमत की इच्छा के द्वारा अल्पसंख्यकों के हित दबने लगते हैं।

2.9 संदर्भ व अन्य लेख

अय्यर, अंकलेश्वर एस., दिसम्बर 16, 2005, "ग्लोबलाइजिंग रूरल इंडिया", *सण्डे टाइम्स ऑफ इंडिया*।

अय्यर, अंकलेश्वर एस., जनवरी 22, 2006, "लिवलीहुड्सः दी मैन इन दी स्ट्रीट", *सण्डे टाइम्स ऑफ इंडिया*।

बाजपेयी एवं वर्मा, 1995, *पंचायती राज इन इंडिया : ए न्यू थर्स्ट*, खण्ड 1, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

भट्टाचार्य, मोहित एवं प्रभात के दत्त, 1991, *गवर्निंग रूरल इंडिया*, उप्पल पब्लिशिंग हाउस।

ब्लेयर, एच., 2000, "पार्टिशिपेशन एंड एकाउंटबिलिटी एट दी पेरीफरीः डेमोक्रेटिक लोकल गवर्नेंस इन सिक्स कंट्रीज", *वर्ल्ड डेवलपमेंट* 28 (1), जॉनसन, क्रेग में उद्धृत, 2003, वर्किंग पेपर, 199, "डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडियाः पॉवर्टी, पॉलिटिक्स एंड पंचायती राज" वेबसाइट http://www.odi.org.uk/publications/working_papers/wp199.pdf पर ऑन लाइन पढ़ें।

कंस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया, सातवाँ संस्करण, ईस्टर्न बुक कम्पनी।

क्रूक, आर.सी. एवं स्वेरीसन, ए. एस., (2001), "डिसेंट्रलाइजेशन एंड पॉवर्टी" एलिवियेशन इन डेवलपिंग कंट्रीजः ए कंपरेटिव एनालिसिस और, इज वेस्ट बंगाल यूनिक?" आई डी एस वर्किंग पेपर, 130, इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज़, जॉनसन, क्रेग में उद्धृत, 2003, वर्किंग पेपर, 199, "डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडियाः पॉवर्टी, पॉलिटिक्स एंड पंचायती राज" वेबसाइट http://www.odi.org.uk/publications/working_papers/wp199.pdf पर ऑन लाइन पढ़ें।

हैरिस, जे. 2001, "सोशल कैपिटल कंस्ट्रक्शन एंड दी कंसोलिडेशन ऑफ सिविल सोसाइटी इन रूरल एरियाज" वर्किंग पेपर, 00–16, डेवलपिंग स्टडीज इंस्टीट्यूट, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, जॉनसन, क्रेग में उद्धृत, 2003, वर्किंग पेपर, 199, "डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडियाः पॉवर्टी, पॉलिटिक्स एंड पंचायती राज" वेबसाइट http://www.odi.org.uk/publications/working_papers/wp199.pdf पर ऑन लाइन पढ़ें।

हिक्की, सेम एवं मोहन जाइल्स, 2003, "रिलोकेटिंग पार्टीसिपेशन विदइन ए रेडिकल पॉलिटिक्स ऑफ डेवलपमेंटः सिटीजनशिप एण्ड क्रिटीकल माडर्ननिज्म", कांफ्रेस ऑन पार्टीसिपेशन : फ्रोम टाइरनी टू ट्रासफॉर्मेशन? एक्सप्लोरिंग न्यू एप्रोचस टू पार्टीसिपेशन इन डेवलपेमेंट ड्राफ्ट वर्किग पर प्रस्तुत किया गया पेपर।

हूजा, बी., 1986, "रूरल डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडियाः सम पॉलिसी इम्पलिकेशन्स", रमेश अरोड़ा और पी.सी. माथुर (संपा.), *डेवलपमेंट पॉलिसी एंड एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, एसेज़ इन ऑनर ऑफ प्रो. एम. वी. माथुर,* एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

इंगलहर्ट, रोनाल्ड, 1997, *मॉडर्नाइजेशन एंड पोस्ट मॉडर्नाइजेशन : कल्चरल इकॉनामिक्स एंड पॉलिटिकल चेंज इन 43 सोसाइटीज,* प्रिंसटोन, एन. जे., प्रिंसटोन यूनिवर्सिटी प्रेस।

जॉनसन, क्रेग, 2003, वर्किंग पेपर, 199, "डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडियाः पॉवर्टी, पॉलिटिक्स एंड पंचायती राज" वेबसाइट http://www.odi.org.uk/publications/working_papers/wp199.pdf पर ऑन लाइन पढ़ें।

ऑस्ट्रोम, ई., 1990, *गवर्निंग द कॉमसः द इवोल्युशन ऑफ इंस्टीट्यूशन फॉर कोलेक्टिव एक्शन,* कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।

अरोड़ा, रमेश, के. एवं एम.वी. माथुर (संपा.), 1986, *डेवलपमेंट पॉलिसी एंड एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, एसेज़ इन ऑनर ऑफ प्रो. एम. वी. माथुर,* एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस।

रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी ऑन डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन, 1961, कोपरेशन एंड रूरल डेवलपमेंट डिपार्टमेंट महाराष्ट्र।

रोंडनेली, डेनिस, ए. जॉन, आर. नैल्स एवं जी शबीर चीमा, 1984,, *डिसेंट्रलाइजेशन इन डेवलपिंग कंट्रीजः ए रिव्यू ऑफ रिसेंट एक्सपियरेंस,* वर्ल्ड बैंक स्टॉफ वर्किंग पेपर्स संख्या 581, मैनेजमेंट एंड डेवलपमेंट सीरिज, संख्या 8, वाशिगंटन, डी.सी., यू. एस. ए.।

सेन, अमर्त्य, 1990, *डेवलपमेंट एज़ फ्रीडम*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन।

मीनाक्षीसुंदरम्,, एस. एस., 1999, "डिसेंट्रलाइजेशन इन डेवलपिंग कंट्रीज" एस. एन. झा, एवं पी.सी. माथुर (संपा.) डिसेंट्रलाइजेशन एंड लोकल पॉलिटिक्स : रीडिंग्स इन इंडियन गवर्नमेंट एंड पॉलिटिक्स (2) लंदन, सेज, पृष्ठ 54-69, जॉनसन, क्रेग में उद्धृत, 2003, वर्किंग पेपर, 199, "डिसेंट्रलाइजेशन इन इंडियाः पॉवर्टी, पॉलिटिक्स एंड पंचायती राज" वेबसाइट http://www.odi.org.uk/publications/working_papers/wp199.pdf पर ऑन लाइन पढ़ें।

रॉउली, के. चार्ल्स, 1987, डेमोक्रेसी एंड पब्लिक च्यूआइसः एसेज इन ऑनर ऑफ जोर्डन टुल्लोक, ऑक्सफोर्ड बसील, ब्लैकवेल।

सुंदरम, के. वी., 2003, समीक्षार्थ प्रति, डिसेंट्रलाइज्ड मल्टीलेवल प्लानिंगः प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिसेज़ (एशियन एण्ड अफ्रीकन एक्सपीरियेंसेज़), कांसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली।

2.10 अभ्यास

1) लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में वर्णित तीन मुख्य तर्कों की व्याख्या कीजिए। क्या आप ऐसे तर्कों से सहमत हैं कि वे भारतीय संदर्भ में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में हैं?

2) भारत में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष वाली विभिन्न धाराओं और संशोधनों का वर्णन कीजिए।

इकाई 3 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रासंगिक आयाम – II : सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के सामाजिक आयाम

3.2.1 सामाजिक रूपांतरण के एक साधन के रूप में पंचायती राज संस्थाएँ

3.2.2 शहरी समाज पर प्रभाव

3.3 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का भौगोलिक संदर्भ

3.4 आर्थिक संदर्भ

3.5 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण : अच्छे शासन के साधन

3.6 सारांश

3.7 मुख्य अवधारणाएँ

3.8 संदर्भ व अन्य लेख

3.9 अभ्यास

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- विकेन्द्रित प्रशासन (Decentralised Administration) की संकल्पना के बारे में समझ सकेंगे;
- विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) के संवैधानिक संदर्भ पर प्रकाश डाल सकेंगे; और
- सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक दृष्टिकोण से विकेन्द्रीकरण के प्रासंगिक आयामों (Contextual dimensions) को विशिष्ट रूप से उजागर कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण *(Democratic Decentralisation) की संकल्पना आधुनिक आर्थिक और राजनीतिक सिद्धान्तों में राजनीतिक पुनर्निर्माण और आर्थिक विकास के लिए नई नीतियाँ बनाने के लिए बहुत प्रचलित हो गई है। यह कोई नया कथन नहीं है। इसके बारे में लेखकों, समाज सुधारकों, राजनीतिक दार्शनिकों, आधुनिक अनेकवादियों और उदारवादी समाजशास्त्रियों द्वारा काफी चर्चा एवं वाद-विवाद किया गया है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण भारत में विभिन्न नामों से वर्णित किया गया है, जैसे "क्रियात्मक लोकतंत्र", "आधारभूत लोकतंत्र", "निम्न स्तर से निर्माण", "पंचायती राज" आदि* (मलिक, 2004)। इस कथन पर गहराई से बात की जाए तो "विकेन्द्रीकरण" में अनिवार्यतः लोकतांत्रिक

अर्थ ही नहीं होता, अतः लोकतांत्रिक "विशेषण" इस कथन में विशेष अर्थ प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यह इस अर्थ में लोकतांत्रिक है कि वह स्रोत जिससे अधिकार विकेन्द्रित किए जाते हैं उसका आधार लोकतांत्रिक होता है और वह संस्था जिसको अधिकार पहुँचते हैं वह भी लोकतांत्रिक रूप से संगठित होती है। लोकतंत्र का अर्थ है कि ग्रामीण विकास की संपूर्ण प्रक्रिया नीति-निर्माण से लेकर कार्यान्वयन और मूल्यांकन तक लोगों के द्वारा निर्धारित की जाती है। फिर भी इसके विकास पक्ष की अपेक्षा सभी में लोकतांत्रिक तत्व को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। भारतीय संदर्भ में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की संकल्पना अधिकांशतः आत्म निर्भर ग्रामीण गणतंत्र वाली अहिंसात्मक सामाजिक व्यवस्था के गांधीवादी दर्शन के समान है।"

महात्मा गांधी के अनुसार "केन्द्रीकरण एक व्यवस्था के रूप में समाज की अहिंसात्मक संरचना के विपरीत है" (हरिजन 18, जनवरी, 1942) चूँकि केन्द्रीकरण को बिना पर्याप्त ताकत के बनाए नहीं रखा जा सकता और उसकी रक्षा नहीं की जा सकती। उसने सुझाव दिया कि यदि भारत को अहिंसा मार्ग के साथ विकसित होना है तो उसे विकेन्द्रित होना होगा। महात्मा गांधी ने इसे परिवर्तन और संघर्ष राजनीतिक अस्थिरता और प्रशासनिक अदक्षता के तत्कालीन काल में व्यवस्था की पुनर्स्थापना के लिए आवश्यक माना है। यह कहना उपयुक्त होगा कि व्यावहारिक आर्थिक नीति के अभाव में विकल्प की, गांधीवादी अर्थव्यवस्था और राजनीतिक विचारों की गहन और निष्पक्ष जाँच आवश्यक है। यह काफी हद तक हमारी राष्ट्र पुनर्निर्माण और पुनः उत्थान की समस्याओं के प्रति तार्किक विचारधारा है। इस इकाई में हम लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण विशेषतः सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक संदर्भ में प्रासंगिक आयामों की चर्चा करेंगे।

3.2 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सामाजिक आयाम

मूलभूत लोकतंत्र का संस्थात्मक प्रक्रिया के माध्यम से ठोस प्रयास किया गया है। सैद्धान्तिक विचारधारा अभिकर्त्ता संरचना की पारस्परिकता के माध्यम से संस्थात्मक या सामाजिक संरचना बनाने की है। मूल कथन यह है कि चीजों की सामाजिक योजना में मानव व्यवहार कोई स्वतंत्र चर नहीं है। अपितु यह वातावरण से प्रभावित होता है। वातावरण एक व्यापक शब्द है जिसमें मौटे तौर पर सामाजिक, राजनीतिक, कानूनी, प्रशासनिक और आर्थिक वातावरण शामिल हैं जो प्रायः हमारे सोचने व अनुभव करने के तरीके को प्रभावित करते हैं। मौटे तौर पर संस्कृति में निहित है। सामाजिक क्षेत्र में उपर्युक्त संरचनाएँ प्रस्तुत करते हुए संस्थागत समाजशास्त्रियों का विश्वास था कि यदि मानव व्यवहार वास्तव में एक आश्रित चर होता तो सामाजिककरण के स्वरूप पर अपना प्रभाव डालता और बाद में एक समय बाद व्यवहार को वांछनीय ढंग से परिवर्तित करते हुए मूल्यों के आंतरिक कथन को भी प्रभावित करता। संरचना अभिकरण (Structure-agency) मुख्यतः प्रसिद्ध समाजशास्त्री जैसे टेलकॉट पार्सन्स, जॉर्ज साइमेल और रॉबर्ट इलियास को श्रेय देती है जबकि आधुनिक समाजशास्त्रियों जैसे जॉर्ज रिट्जर और निकोस मौजलिस एवं अन्य को अधिक विकास का श्रेय दिया जाता है। चीजों की पर्सोनियन योजना में संस्थाकरण को "प्रक्रिया व संरचना" दोनों के रूप में वर्णित किया गया है। प्रक्रिया को सामाजिक व्यवहार में निम्नलिखित चरणों में विकास के अनुसार परिभाषित किया गया है: (क) विभिन्न स्थितियों में कार्य करने वालों की स्थितियाँ उनके पारस्परिक संपर्क के अनुसार होगी; (ख) उनकी दिशा/शाखाएँ उनकी आवश्यकता की संरचना से निकलती हैं और उसके प्रभाव का कारक उनके संगत सांस्कृतिक मूल्यों के द्वारा (उनके सामाजिक वातावरण से) निर्धारित होता है; (ग) विशिष्ट पारस्परिक प्रक्रियाओं के माध्यम से नियम बनते हैं जो परवर्ती व्यवहार का मार्गदर्शन करते हैं, जबकि कार्य करने वाले परस्पर अपनी स्थितियों का समायोजन करते हैं; (घ) ऐसे नियम कार्यकर्त्ताओं द्वारा परस्पर एक सामान्य आधार तलाश करने के लिए उनकी विभिन्न परिस्थितियों के समायोजन के तरीके के रूप में उत्पन्न होते हैं परन्तु ये सामान्य सांस्कृतिक वातावरण से बाधित होते हैं; (ङ) फिर भी इसके

बाद ये नियम स्थापित हो जाते हैं और व्यवहार स्थिर करते हुए परवर्ती परस्पर व्यवहार को विनियमित करते हैं और इस प्रकार वांछित परिवर्तन लाते हैं यद्यपि इस तरह के परिवर्तन की सीमा या मात्रा पहले से वर्णित नहीं की जा सकती (राय, 2004)। यह सिद्धान्त से सत्तामीमांसा के सामान्य क्षेत्र से सम्बन्धित है। सामाजिक सत्तामीभासक कारण-कार्य प्रभाव की जाँच करने का प्रयास करते हैं जो सामाजिक सम्बन्ध निर्धारित करती है। इसके अनुसार एक समय यह विश्वास किया जाता था कि गाँवों में स्थानीय स्वसरकारी संस्थाएँ सामाजिक संरचना में सामाजिक और शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े और निर्बल वर्गों को सदस्यता के लिए समान अवसर प्रदान करेगी और पारंपरिक कुलीन तंत्र/सामंती सामाजिक व्यवस्था कभी न कभी अधिक समान और लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को मार्ग प्रदान करेगी। इससे समाजशास्त्रीय संदर्भ में सामाजिक संरचना पर प्रभाव पड़ेगा। इस प्रकार प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा होगी जो ऐसे अधिकारों का उपयोग और कार्यों का निष्पादन करेगी जो राज्य के विधानमंडल द्वारा कानून प्रदान किए जाएँगे। इसका विचार प्रत्यक्ष लोकतंत्र की तरह स्थानीय स्तर पर सरकारी मामलों में लोगों की आवाज उठाना था जिसका अभी तक प्रयास नहीं किया गया था। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का प्रयास निष्क्रिय लोकतंत्र से सक्रिय लोकतंत्र की ओर स्थानांतरण के रूप में उद्धृत होता है जहाँ लोग अगले राज्य या केन्द्र के चुनाव होने तक पाँच वर्षों में अपनी पसंद बताने और बाद में निष्क्रिय रहने की आशा से दैनिक रूप से अपने सरोकारों में भाग लेते हैं और सक्रिय रूप से आवाज उठाते हैं। अभी तक गाँवों में रहने वाली बहुत बड़ी जनसंख्या एक साधारण कारण से लोकतंत्र के प्रभावों से वंचित रही है कि प्रशासन और राजनीतिक स्वामियों की जिम्मेदारी एवं संवेदना स्थानीय स्तर पर लागू नहीं हुई है जहाँ पर अधिकतर विकास प्रयास और परिणाम अपेक्षित हैं। इससे योजना के प्रयास पूरी तरह व्यर्थ हो जाते हैं क्योंकि विकास नीतियों के प्रभावहीन कार्यान्वयन एवं सरकारी मशीनरी की कपटपूर्ण परंपरा जिनकी सूचना एवं जाँच नहीं होती, के कारण लक्ष्य पूरे नहीं होते। भौतिक रूप से निकटता से सरकारी कर्मचारियों की सार्वजनिक जाँच हो सकेगी जिससे जिन सामान्य लोगों को कुछ जानने का हक है एवं हाल ही में गाँवों में सक्रिय हुए स्वयंसेवी संगठन गलती या सरकारी कर्मचारियों द्वारा जानबूझ कर की गई भूलों के लिए प्रश्न करेंगे और योजनाओं में अपने अधिकार का दावा करेंगे। फिर यह अनुमान कि भौतिक दूरी का प्रशासन की संवेदनशीलता और दक्षता से परस्पर सीधा सम्बन्ध है, आने वाले वर्षों में उसकी भी जाँच हो जाएगी। यह विचार विशुद्ध रूप से स्वराज या स्व-शासन के आदर्श पर लिया गया है कि ऐसा प्रयास प्रभुसत्ता संपन्न लोगों को अपने से सम्बन्धित मामलों में नेतृत्व करने की शक्ति प्रदान करेगा ताकि उनका ठीक से समाधान हो न कि वे दूर उस केन्द्र सरकार या राज्य सरकार पर आश्रित रहें जिसके पास उनके दैनिक सरोकारों के लिए न तो समय है और न ही उसकी जाँच करने में रूचि है। और तो और भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के वर्तमान काल में जहाँ वार्षिक बजट आबंटन में ग्रामीण विकास से हटकर व्यावसायिक सरोकारों पर अधिक ज़ोर है। फिर भी, इस सम्बन्ध में बड़ी कमी ग्रामीण जनता में शिक्षा का अभाव है जो अपने प्रश्न करने के अधिकार से समझौता कर लेते हैं। अपेक्षित लाभ प्रदान करने की संभावना वाले सूचना के अधिकार के प्रावधानों से साक्षरता अभियानों से तत्काल प्रोत्साहित करना आवश्यक हो जाता है। प्रत्यक्ष/सीधे लोकतंत्र के लिए एक संस्था के रूप में "ग्राम सभा" (गाँवों की वैधानिक सभा) अधिकतर भारतीय राज्यों जैसे गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश आदि में विद्यमान है। अब ग्राम सभा के लिए संवैधानिक प्रावधान है। 26 जनवरी 1963 को सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय ने पंचायती राज आंदोलन में ग्राम सभा की स्थिति का अध्ययन करने के लिए एक भूतपूर्व राज्यसभा सदस्य एवं गांधीवादी श्री आर. एस. दिवाकर की अध्यक्षता में एक अध्ययन समिति का गठन किया। दिवाकर समिति की रिपोर्ट बताती है कि "हमारा अनुभव है कि 1947 के अधिनियम के अनुसार जिन राज्यों में ग्राम सभा बनाई गई थीं नहीं कहा जा सकता है कि वे वास्तव में कार्य कर रही थीं। प्रायः ग्राम सभा की बैठकों में उपस्थिति बहुत कम रहती थी और गणपूर्ति (कोरम) कभी पूरा नहीं हुआ।" यद्यपि समिति ने ग्रामसभा को पुनर्जीवित करने की सिफारिश की लेकिन देश

में उनकी स्थिति सुधारने का कोई प्रयास नहीं किया गया। जनवरी 1964 में तत्कालीन केन्द्रीय सामुदायिक विकास, सहकारिता और पंचायती राज मंत्री ने अखिल भारतीय पंचायत परिषद सेमिनार में स्वीकार किया कि "हम जानते हैं कि संवैधानिक प्रावधान होने के बावजूद ग्रामसभा के सदस्य इस संस्था के विचार-विमर्श में भाग नहीं लेते हैं। पूरे देश में यही हालत है" (रजनीश, 2002)।

इसी क्रम में अब उनकी आबादी के अनुपात में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए प्रत्येक स्तर पर पदों का आरक्षण किया गया है। कुल सदस्यों की न्यूनतम एक-तिहाई सदस्यता महिलाओं के लिए आरक्षित है और ये स्थान प्रत्येक पंचायत में बारी-बारी से विभिन्न चुनाव क्षेत्रों में आबंटित किए जाते हैं। अध्यक्ष पद के लिए भी यही प्रावधान किया गया है। यह समान अवसरों की संवैधानिक गारंटी के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था में प्रत्यक्ष मध्यस्थता है। क्योंकि पारंपरिक सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था पर अध्यारोपित लोकतांत्रिक संस्थाएँ धनी और समाज के सक्षम वर्गों को शक्तिशाली बनाने के विपरीत कार्य करती थीं। वांछित सामाजिक संरचना केवल अनुमान एवं भविष्यवाणी है जो एक धीमी प्रक्रिया है। अनुभव किया गया है कि लोगों को विशेषतः समाज के वंचित वर्गों को सशक्त करने की आवश्यकता है। भागीदारी का एक लक्ष्य है जिसे समुदाय परस्पर बाँटता है। इस परस्पर विचार विनिमय से सामान्य लक्ष्य प्राप्त करने के लिए समुदाय के सदस्य मिलकर कार्य करते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में लक्ष्य ही मानदंड निर्धारित करते हैं और व्याख्या करते है कि भागीदार कौन है? विभिन्न भागीदारों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाएँ उनकी क्षमता और योग्यता जैसे कौशल, तकनीकी ज्ञान, औपचारिक प्रतिष्ठा, शिक्षा, धन पर नियंत्रण तथा सत्ताधारी लोगों से संपर्क पर निर्भर करती हैं।

समाज के कमज़ोर वर्गों को भी अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के पदों पर निर्वाचित होने का अवसर प्रदान किया गया है। यदि संविधान में यह प्रावधान नहीं किया जाता तो वंचित समूह केवल सदस्य संख्या तक ही सीमित रहते जिन्हें निर्णय निर्माण प्रक्रिया में ज्यादा कुछ कहने का अवसर नहीं मिलता। केवल भागीदारी ही नहीं होनी चाहिए अपितु निर्धन लोगों को सशक्त बनाया जाना चाहिए। अरविंद के. शर्मा ने ठीक ही कहा है कि "यह पुनर्मूल्यांकन मात्र धन और संसाधनों के तीव्र अन्यायपूर्ण वितरण को गरीबी का दोषी नहीं मानता अपितु प्रशासन की दमनकारी व्यवस्था जिसमें अधिकारों का असमान वितरण किया गया था को भी उतना ही दोषी मानता है। इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि इससे अधिकांश आबादी राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी नहीं कर पाती थी और इस बहुसंख्यक आबादी के पास स्वयं को प्रभावित करने वाले निर्णयों को प्रभावित करने का कोई अवसर नहीं था। यह मुख्य बहुसंख्यक आबादी विकास का प्रतिनिधि न होकर उसका लक्ष्य बनकर रह जाती है" (शर्मा, 1996)।

स्थानीय सरकार के प्रयोगों का परिणाम अव्यवस्था और दिवालिया बना हुआ है प्रशासन की विकेन्द्रित संरचनाएँ केवल अधिकारों के केन्द्रीकरण के प्रभावशाली साधन के रूप में काम करती हैं, अधिकतर क्षेत्रीय और जिला समितियों में सरकारी कर्मचारी निर्णय लेते हैं जबकि स्थानीय प्रतिनिधि मूक बैठे रहते हैं। ग्रामीण परिषदों में स्थानीय लोग भागीदारी तो करते हैं लेकिन उनके पास आबंटन के संसाधन नहीं है (भार्गव और रफैल)। सामाजिक क्रम व्यवस्था शक्तिशाली भागीदारों को सक्रिय और अन्य भागीदारों को निष्क्रिय बनाती है। यह दूसरों के लिए निर्णय करने वाले अधिकार सम्पन्न लोगों के पक्ष में भागीदारी को प्रभावित करता है। विकास प्रक्रिया से प्रायः अधिकतम प्रभावित होने वाले निर्धन समूहों के पास न्यूनतम धन और ताकत है। इस प्रकार निर्धन वर्ग भागीदारी प्रक्रिया स्वतः ही बाहर हो जाता है। विकास प्रक्रिया में निर्णय करना पहला चरण है इसलिए भागीदारी का मुख्य उद्देश्य अब तक उपेक्षित ऐसे समूहों को शामिल करने के तरीके ढूँढना है जो निर्णय निर्माण प्रक्रिया में विकास के नकारात्मक प्रभावों से सीधे प्रभावित हुए हैं। भागीदारी विकास प्रक्रिया में निर्धन समूहों को महत्त्व प्रदान करने की प्रक्रिया है ताकि वे अपने जीवन को प्रभावित करने वाले निर्णयों पर अपने विचार और नियंत्रण

कर सकें। भागीदारी निर्धनतम को सशक्त बनाने की प्रक्रिया है। उपयुक्त भागीदारी का सूचक है कि निर्णय निर्माण और साधन प्रबंधन पर निर्धन समूहों को कहाँ तक अधिकार प्रदान किया गया है।

महिलाओं की विशेषतः ग्रामीण महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय है। स्वतंत्रता के साठ वर्षों बाद भी वास्तविकता सरकारी दस्तावेजों के कथनों से भिन्न है। उनकी भागीदारी कुछ परम्पराओं और मूल्यों के आधार पर सामाजिक-आर्थिक सांस्कृतिक कारणों से अधिकतर मामलों में अभी तक प्रतिनिधितात्मक है। चुनावों में मतदान को छोड़कर 80 प्रतिशत महिलाओं को सक्रिय राजनीति का कोई अनुभव नहीं है। उन्होंने मुख्यतः अपने परिजनों या स्थानीय नेताओं की इच्छाओं/आदेशों की सतुष्टि के लिए चुनाव लड़ा है। समझा जाता है कि वे पंचायती राज संस्थाओं के प्रभावशाली एवं शक्तिशाली पुरुषों सदस्यों द्वारा व्यक्त विचारों के विपरीत विचार प्रकट करने में संकोच करती है। विकास की राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी समानता और विकास के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण है। वर्ष 2001 को महिला-सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाकर भारत ने नई सहस्राब्दी की भी घोषणा की। 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों में आरक्षण धारा का पालन करते हुए लगभग सात लाख महिलाओं ने भारत में मूलभूत स्तर की लोकतांत्रिक संस्थाओं में सदस्य व अध्यक्ष की हैसियत प्राप्त की। इन संशोधनों में जिला, तालुक गाँव और नगर स्तर पर सार्वजनिक जीवन में एक-तिहाई पद महिलाओं के लिए प्रदान किए हैं और पंचायतों के सभी स्तरों पर नेतृत्व की चुनौती को स्वीकार करने के लिए काफी महिला सदस्य आगे आईं हैं। वास्तव में, स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों से भारतीय महिलाओं को सक्रिय राजनीति में भाग लेने के लिए लगातार प्रोत्साहित किया गया है। लेकिन विकृत राजनीतिक वातावरण के कारण राजनीति के बढ़ते राजनीतिकरण और अपराधीकरण के परिणाम से महिलाओं के राजनीतिक भागीदारी के स्तर से महिलाओं की शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि हुई है (सिंह, 2000)।

3.2.1 सामाजिक रूपांतरण के एक साधन के रूप में पंचायती राज संस्थाएँ

73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम (1992) में पंचायती राज संस्थाओं की कुल सदस्यता का न्यूनतम 51 प्रतिशत तक आरक्षण समाज के कमज़ोर वर्गों को प्रदान करता है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के समुदायों का क्रमशः न्यूनतम 15 प्रतिशत और 3 प्रतिशत वैधानिक निर्वाचन होता है। अन्य 33 प्रतिशत स्थान अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित हैं। फिर कुल सभी स्थानों के उपरोक्त आरक्षित स्थानों सहित एकतिहाई स्थान अनिवार्यतः महिलाओं द्वारा भरे जाने हैं। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक शोषणात्मक समाज में वंचित वर्गों पर लादी गई सामाजिक-आर्थिक बाधाओं को समाप्त करने के लिए उन्हें बहुसंख्यक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। समाज के इन कमज़ोर वर्गों को इसी अनुपांत में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के पदों पर भी निर्वाचित होने का अवसर दिया गया है। यदि अधिनियम में प्रावधान नहीं किया जाता तो वंचित समूह केवल सदस्य तक बनकर रह जाता जिससे निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में वह कुछ कह नहीं पाता। अपनी अशिक्षा, अज्ञानता और सामाजिक रूप से पिछड़ेपन के कारण वह अपने समुदायों की भलाई के लिए खड़ा होने का पर्याप्त साहस नहीं जुटा पाता। अध्ययनों से सिद्ध हो गया है कि पंचायती राज संस्थाओं में लोगों ने आरक्षणों को आवश्यक माना है। यद्यपि यह भी ज्ञात हुआ है कि इन स्थानों को आरक्षण के द्वारा भरने के कारण मजबूत नेतृत्व के अभाव में विशेषतः ग्राम पंचायतों की कार्य प्रणाली में रुकावट आई है। निर्वाचित अध्यक्ष द्वारा प्रशासन को सुचारू रूप से संचालन सुनिश्चित करने के लिए कुछ पात्रता मानदंड या न्यूनतम योग्यता निर्धारित करने का सुझाव दिया गया है। यह भी सुझाव दिया गया है कि इन अध्यक्षों और उपाध्यक्षों को नेतृत्व और संप्रेषण दक्षता का पर्याप्त प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए।

अधिनियम में दिए गए आरक्षण गाँव की जनसंख्या के अनुपात में है। अधिक संख्या वाले समुदाय जो अब तक ग्रामीण आधिपत्य वर्ग द्वारा शासित होते थे, में अपनी असंगठित शक्ति का अनुभव करने के लिए विश्वास आने लगा था। इस प्रकार पहली बार स्थानीय सरकारें लोगों का लोगों के द्वारा शासन

प्रणाली में रूपांतरित हुईं। चूँकि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का उद्देश्य निर्धन, अशिक्षित और पिछड़े वर्गों की स्थितियों में सुधार करना था अतः निर्वाचित प्रतिनिधि इन लक्ष्य समूहों का अभिन्न हिस्सा होने के कारण उनकी आवश्यकताओं, अभिलाषाओं और समस्याओं की तदानुभूति कर सकते हैं। वे संभावित लाभार्थियों को भी गतिशील कर सकते हैं। इसलिए योजना निर्माण की प्रक्रिया और कार्यान्वयन में भागीदारी के लिए, विकास के लिए अनौपचारिक विचारधारा की एक प्रभावी प्रक्रिया आरंभ कर सकते हैं। पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों में भी हम नई पीढ़ी का उद्भव देख रहे हैं जो सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए अधिक उत्साहित और उतावले हैं।

फिर भी कमज़ोर वर्गों में युवाओं का काफी संख्या में प्रतिनिधित्व हुआ है और प्रायः 40 वर्ष से अधिक आयु की महिलाओं और 50 वर्ष से अधिक आयु के पुरुषों ने आरक्षित स्थानों से चुनाव लड़ा है। कमज़ोर वर्गों में बड़ी पीढ़ी प्रभुत्वशाली वर्गों की प्रभुता के प्रति अधिक विनम्र है और उन्हें अन्याय व पक्षपात सहने की आदत पड़ी हुई है। अतः यदि वे अध्यक्ष निर्वाचित होते हैं तो भी पंचायती राज अधिनियम द्वारा अपेक्षित सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन करने में सफल नहीं होते। फिर भी, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया हमेशा धीरे-धीरे होती है। राज्य सरकारों को सुनिश्चित करना चाहिए कि यह निरंतर और सुचारु रूप से जारी रहे।

राज्यों के नए विधानों में अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों तथा महिलाओं के लिए सरपंच के पदों को आरक्षित किया गया है। पंजाब पंचायती राज अधिनियम, 1994 के अनुसार जिले में ग्राम पंचायतों के सरपंचों के कुल पदों के न्यूनतम एक-तिहाई पद अनुसूचित जातियों के लिए तथा न्यूनतम एक-तिहाई सरपंच के पद अनुसूचित जाति की महिलाओं सहित महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान जैसे कुछ राज्यों में अध्यक्ष पद अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षित किए गए हैं जबकि पंजाब में सरपंचों के पदों में पिछड़े वर्गों के लिए कोई आरक्षण नहीं किया गया है। आरक्षित पद विभिन्न पंचायतों में बारी-बारी से आवंटित किए जाते हैं।

चन्द्र बी. पी. सिंह ने *भारतीय लोक प्रशासन जर्नल* (*Indian Journal of Public Administration, IJPA*), अक्तूबर-दिसम्बर 1998 में अपने लेख "भारत में संस्थात्मक पंचायत व्यवस्था" (Institutionalising Panachyat System in India) में एक सरपंच में नेतृत्व के अपेक्षित गुणों की सही जाँच की है। पंच तथा सरपंच के रूप में निर्वाचित होने के बाद भारतीय संविधान में दृढ़ आस्था तथा बिना किसी भय, या भेदभाव, लगाव अथवा दुर्भावना के निष्ठा से कर्त्तव्य निर्वाह करने और लोगों के लिए अच्छा कार्य करने की शपथ लेना आवश्यक है। इसे उपयुक्त नेतृत्व प्रशिक्षण एवं सशक्तिकरण के माध्यम से विशेषतः कमज़ोर वर्गों के मामले में व्यावहारिक बनाया जा सकता है।

उपरोक्त संस्थात्मक सिद्धान्त को दोहराते हुए रॉय (2004) ने मान (1985) को उद्धृत करते हुए इसकी इस प्रकार व्याख्या की है, "एक प्रक्रिया के रूप में संस्थात्मकता का अर्थ विभिन्न सामाजिक और संगठनात्मक संरचनाओं में व्यवहार के नियमों की धीमी प्रगति और निश्चित आकार ग्रहण करना है। संस्थात्मकता के उदाहरणों में शामिल है नेतृत्व गुणों का नित्यक्रम बनाना और वैधानिक युक्तिसंगत प्रशासन का धीरे-धीरे उदय होने या राज्य निर्माण की प्रक्रिया और संबद्ध नागरिककरण की प्रक्रियाएँ, अथवा आधुनिक समाजों में विनियमित यूनियन प्रबंधन समझौतें और बड़े लोकतांत्रिक राजनीतिक दलों की स्पर्धा आदि। नेतृत्व गुणों का नित्यक्रम लोकतंत्र की शक्तिशाली विरोधी ताकत है जिसके लिए वैधानिक युक्तिसंगत व्यवस्था होना आवश्यक है। फिर भी, नेतृत्व का अधिकार सामाजिक सम्बन्धों में विशेषतः भारत के गाँवों में इतना अधिक संस्थापित है कि इसे वैधानिक युक्तिसंगत अधिकारों से बदलने के लिए सकारात्मक मध्यस्थता करना अनिवार्य है। संरचनात्मक मध्यस्थता से आशा की जाती है कि व्यवस्था में परिवर्तन होगा जिससे उचित समय में स्वस्थ परम्पराओं की स्थापना होगी। फिर भी, इन

परिवर्तनों को प्रभावी बनाने की राजनीतिक इच्छा इन संरचनात्मक मध्यस्थताओं की प्रभाविता में महत्त्वपूर्ण चर होगा। यदि प्रक्रिया का तर्क समझ लिया जांए तो सामाजिक रूपांतरण की भविष्यवाणी कोई अस्वाभाविक विचार नहीं माना जा सकता। यदि सामाजिक कल्याण के लिए कार्य शैली को विपरीत पाया जाए तो उपयुक्त संशोधनों के लिए मानव निर्मित व्यवस्थाओं को आजमाना चाहिए।

सामाजिक रूप से कमज़ोर वर्गों के लिए कार्यक्रम

1999 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की आबादी क्रमशः 13.82 करोड़ व 6.98 करोड़ है। जो पूरे देश की आबादी का 16.48 प्रतिशत तथा 8.08 प्रतिशत बैठती है। फिर आँकड़े यह भी प्रकट करते हैं कि 0-6 वर्ष के आयु वर्ग के अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बच्चे कुल अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की आबादी का क्रमशः 19.63 प्रतिशत और 20.18 प्रतिशत हैं। इसका अर्थ यह है कि उनकी कुल आबादी का लगभग पाँचवाँ भाग इस सुभेद्य एवं रचनात्मक आयु समूह का है। गरीबी की रेखा से नीचे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों की संख्या का प्रतिशत समाज के अन्य वर्गों से काफी अधिक है जैसा कि राष्ट्रीय सांख्यिकी संगठन (NSSO) के सर्वेक्षणों से एकत्रित आँकड़ों से देखा जा सकता है।

लगभग आधे (49.06 प्रतिशत) अनुसूचित जाति तथा एक-तिहाई (32.69 प्रतिशत) अनुसूचित जनजाति के मुख्य श्रमिक कृषि श्रमिक हैं। कृषि श्रम का कार्य मौसमी तथा मानसून पर आधारित होने के साथ कम वेतन वाला रोज़गार है। 77.11 प्रतिशत और 90.03 प्रतिशत क्रमशः अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के श्रमिक अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र में तथा 9.83 प्रतिशत एवं 3.85 प्रतिशत मध्यक्षेत्र में तथा क्रमशः 13.06 प्रतिशत और 6.12 प्रतिशत तीसरे क्षेत्र में कार्यरत थे। फिर भी अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों में निर्धनता की सीमा पर विचार करते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि जिन कार्यों में वे संलग्न हैं उनमें पर्याप्त आमदनी होनी चाहिए। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की महिला श्रमिकों की तुलना में (25.98 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा 43.71 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति) पुरुष अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के श्रमिकों की भागीदारी दर (51.48 प्रतिशत अनुसूचित जाति तथा 54.79 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति) अधिक है। अनुसूचित्त जाति और अनुसूचित जनजाति महिला श्रमिकों की भागीदारी दर कुल आबादी में अपने पुरुष साथियों की तुलना में अत्यधिक उच्च है। यह अंतर अनुसूचित जाति की महिला श्रमिकों के संदर्भ में तो और भी अधिक है। यह इस बात का प्रमाण है कि आर्थिक विवशताओं के कारण अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं को काफी मात्रा में कड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

महत्त्वपूर्ण कार्य हस्तांतरण

प्रो. एस. गुहा का कथन है कि 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के प्रावधान राज्यों से स्थानीय संस्थाओं को प्रशासनिक और आर्थिक अधिकारों के हस्तांतरण को सुगम एवं प्रोत्साहित करने के लिए प्रशासनिक संघवाद को मजबूत करता है। ग्यारहवीं अनुसूची में स्थानीय संस्थाओं को हस्तांतरित किए जाने वाले 29 विषयों को सूचीबद्ध किया गया है। सूची में शामिल विषयों के अध्ययन से पता लगता है कि ये विविध प्रकार के कार्य हैं जिनके लिए स्थानीय स्तर पर ही विशेषज्ञता विकसित करने की आवश्यकता है। फिर भी प्रशासन विकास के संदर्भ में विशेषतः हस्तांतरित किए जाने वाले महत्त्वपूर्ण विषयों पर अधिकतर अधिकार और दायित्व नौकरशाही के पास है। यदि आबंटित कार्यों के सफल निष्पादन हेतु आवश्यक विशेषज्ञता नहीं विकसित होती है तो स्थिति में पर्याप्त बदलाव आने की संभावना नहीं है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य है राज्य सरकारों द्वारा कार्य हस्तांतरण की इच्छा यह भी पहली स्थिति से सम्बन्धित है। चूँकि दायित्व निष्पादन के लिए प्रशासनिक अधिकार राज्यों द्वारा पारित कानूनों से प्राप्त होते हैं। इसलिए गेंद स्पष्टतः राज्यों के पाले में है। अतः इस सम्बन्ध में यदि इच्छा हो तो यह निरंतर उच्च विन्यासित नौकरशाही के प्रभाव में ही रह सकती है। विशेषज्ञता के संदर्भ में

विद्यमान समितियों के बारे में संवैधानिक संशोधन चुप हैं तो भी उन पर पर्याप्त विचार किया गया है तथा उनकी हैसियत और स्थिति को संवैधानिक गारंटी प्रदान की गई है। अधिकतर राज्यों में सभी तीनों स्तरों पर समितियाँ विद्यमान हैं लेकिन उसकी संख्या (2 से 5), संरचना, ढाँचा, कार्य क्षेत्र और कार्य विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न हैं। इनकी सदस्यता भी उनकी इच्छा पर निर्भर है। जहाँ तक स्थाई समितियों के सदस्यों की संख्या का सम्बन्ध है, अधिकतर मामलों में 2 से 6 के बीच रहती है तथा इनका निर्वाचन पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जाता है अधिकतर मामलों में ग्राम पंचायत का अध्यक्ष या उपाध्यक्ष ही स्थाई समितियों के अध्यक्ष का कर्त्तव्य निर्वाह करते हैं (वाजपेयी व वर्मा, 1995)।

बिना सहगामी संसाधन हस्तांतरण के कार्यों का हस्तांतरण करना व्यर्थ कार्य है। राज्य विधान मंडलों को पंचायतों द्वारा शुल्क लगाने, उपयुक्त स्थानीय कर लगाने व एकत्रित करने का अधिकार प्रदान करने के लिए तथा सम्बन्धित राज्य के समेकित कोश से पंचायतों को सहायक अनुदान भी प्रदान करने का अधिकार दिया गया है। पंचायतों की आर्थिक स्थिति की समीक्षा करने तथा राज्य एवं स्थानीय संस्थाओं के बीच धन राशि वितरण पर उपयुक्त सिफारिशें करने के लिए प्रत्येक पाँच वर्षों में एक वित्त आयोग का गठन किया जाएगा। यद्यपि यह उन राज्यों के लिए चिंता का मामला है जो निरंतर केन्द्रीय सरकार के ऋणी रहते हैं। अतः हो सकता है कि वे स्थानीय सरकारों को वास्तव में पर्याप्त सहायता देने की स्थिति में न हों। अतः स्व-शासन की संस्थाओं के रूप में शहरी और ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं को मजबूत करने के लिए राज्य सरकारों की आर्थिक स्थिति को सुधारना आवश्यक हो जाता है।

3.2.2 शहरी समाज पर प्रभाव

इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि आज हम निम्नलिखित शहरी समस्याओं का समाधान कर रहे हैं :

क) अधिकांशतः गाँवों से शहरी केन्द्रों पर प्रवास आकर्षण और धकेलने के परिणामों का कारण है तथा भारत के किसी भी भाग में रहने के मौलिक अधिकारों की भी अनदेखी नहीं की जा सकती। इसका सम्बन्ध जनसंख्या विस्फोट से है जिसने उन संसाधनों से परे शहरी प्रशासन के लिए विशाल समस्या खड़ी कर दी है जो संभवतः शामिल विषयों के समाधान में गतिशील हो सकते थे।

ख) बस्तियों और घनी आबादी वाले आवास कुकरमुत्ते की तरह फैल गए है जहाँ लगभग 50 प्रतिशत शहरी आबादी अमानवीय परिस्थितियों में रहती है जिसमें विशेषतः निर्धन वंचित समूह, महिलाएँ और बच्चे शामिल हैं। समाजशास्त्रियों ने इस संयुक्त घटना को अत्यधिक शहरीकरण कहा है जिसका अभिप्राय है शहरी क्षेत्रों में अत्यधिक क्षमता की अत्यधिक माँग। जिससे शहरों में स्थान और समावेश की समस्या हो जाती है।

बढ़ती बस्तियों की समस्या से निपटने के लिए सरकार उत्पादक निवेश की जोखिम पर दुर्लभ संसाधनों का सामाजिक निवेश में अत्यधिक बड़ा हिस्सा आंवटित करती है (अब्राहम, 2006), हौसर (1970) को उद्धृत करते हुए अब्राहम (2006) कहता है कि व्यापक निर्धनता तथा शहरी बस्तियों में कुंठाओं के कारण उनकी समस्याएँ जैसे आंतरिक विकार, राजनीतिक बेचैनी और सरकार की अस्थिरता बढ़ जाती है। वे आगे कहते हैं कि शिक्षा और कल्याणकारी सेवाओं एवं अन्य कार्यों की योजना बनाने और उन्हें प्रदान करने में मूलभूत सेवाएँ कम तथा प्रभावहीन रहती हैं। अतिरिक्त श्रमिक बल को खपाने के लिए सरकारें उत्पादन की श्रमवादी तकनीकें अपनाने पर विवश हो जाती हैं जिससे देश में तकनीकी विकास रूक जाता है।

ग) सबके लिए आवास जो मूल मानव अधिकार है, सरकारी मध्यस्थता के माध्यम से आवास बोर्ड, शहरी विकास प्राधिकरण और अन्य स्थानीय स्वसरकारी अभिकरण बनाने के बावजूद पूरा नहीं

कर पा रहा है। अनधिकृत आवासीय बस्तियों के बनने से पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा बन गया है तथा सरकार को कठिन नीतियाँ बनानी पड़ती है। संघर्ष का वातावरण उन दबाव समूहों जो तर्कसंगत नीति प्रक्रियाओं के चारों ओर निर्मित होते हैं और निहित हितों के लिए दबाव डालते हैं में अव्यवस्था उत्पन्न कर देता है। निर्वाचन प्रक्रिया और कानून के शासन का विनाश और विशेष माँगों का उभरना इस अव्यवस्था के प्रत्यक्ष परिणाम हैं।

घ) पेयजल वितरण, जल व मल निकास, कूड़े को एकत्रित करने और निपटाने जैसी आवश्यक सेवाओं का अभाव शहरी लोगों के स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरे के कारक हैं। आर्थिक संसाधनों के अभाव के कारण शहरी प्रशासन शहरी लोगों के लिए उपयुक्त स्वच्छता, सफाई और स्वस्थ जीवन सुनिश्चित करने में असमर्थ है।

ङ) अपर्याप्त विद्युत आपूर्ति, सड़कें व पुल, परिवहन तथा दूरसंचार कई तरह से शहरों के आर्थिक विकास में बाधक हैं विशेषतः औद्योगिकीकरण को उन्नति रूपी गाड़ी का चालक (इंजन) कहा जाता है।

च) माँग के दबाव में प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन होता है। कई शहरी केन्द्रों में विशेषतः दस लाख से अधिक आबादी वाले शहरों में गंभीर पर्यावरण सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो गए हैं जो लोगों के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं और उनके महत्त्वपूर्ण अस्तित्व के लिए खतरा हैं।

छ) हमारे देश में अस्थाई शहरी विकास भी शहरीकरण के लिए हानिकारक है जो अनुपयुक्त तकनीकों, प्राचीन तरीकों और अनियंत्रण साधनों से उत्पन्न होता है। विकास में दूरदर्शिता और व्यापक परिप्रेक्ष्य के अभाव ने संतुलित ग्रामीण-शहरी विकास, देशी संसाधनों के संरक्षण, पारिस्थितिकी संतुलन को विकृत कर दिया है और प्रकृति का विनाश हुआ है।

ज) स्वतंत्रता के बाद महिलाओं, बच्चों और पिछड़ी जातियों जैसे उपेक्षित वर्गों का आर्थिक विकास में सामाजिक-आर्थिक बहिष्कार एक अन्य सामाजिक समस्या है जिसे इन संदर्भों में नीति के द्वारा ठीक करना आवश्यक है।

इस प्रकार उपरोक्त समस्याओं के कारण शहरी समाज में अधिकतर शहरी निर्धन लोगों की दुर्दशा है जो अमानवीय परिस्थितियों में रहते हैं। एक बड़ा प्रमुख मुद्दा शहरी मूलभूत सुविधा में सुधार करना है। वंचित करने के वातावरण, कानून विहीनता तथा सांस्कृतिक विकृति परिणाम दिखा सकते हैं। अवांछित सामाजिक स्थिति को पहले से ही ठीक करने के लिए लोगों को उनसे सम्बन्धित चुनावों/विकल्पों में उन्हें शामिल करने की आवश्यकता है। थॉमस (2004) में बताए गए आर्थिक सर्वेक्षण 2003-04 में उद्धृत करते हुए तथ्य के पक्ष में कहा गया है कि "अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव बताते हैं कि शहरी मूलभूत सुविधा के लिए संस्थात्मक संरचना में सुधार किए बिना शहरी क्षेत्र में केन्द्र या राज्य सरकार द्वारा व्यय किया गया धन अपेक्षित सामाजिक या आर्थिक परिणाम प्रदान नहीं करेगा। इसके विपरीत शहरी क्षेत्र में मूलभूत सुविधा या निर्धनता की गहन समस्या होने पर वह बड़ी आर्थिक माँग कर सकता है और भारत की आर्थिक समस्याएँ बढ़ जाती है। निम्नलिखित संस्थात्मक सुधारों की पहचान की गई है :

- संविधान के 74वें संशोधन अधिनियम में प्रस्तुत शहरी स्थानीय संस्थाओं (ULBs) को मजबूत करना
- सामुदायिक संरचनाओं को मजबूत बनाना तथा उनमें परिवर्तन करना ताकि बुनियादी स्तर पर रहने वाले लोगों की प्रतिनिधि संस्थाएँ हो जिनके द्वारा वे सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों में शामिल हो सकें (भारत सरकार, 2004)

शहरी स्थानीय संस्थाओं को मजबूत किए बिना यह संभव नहीं है। प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है अपने स्तर पर सेवा वितरण में सुधार के लिए उनके संसाधन आधार को मजबूत बनाने की आवश्यकता हैं। जन-सुविधा शुल्क प्रभाव में अधोगामी है अर्थात् निर्धनों को अमीरों की अपेक्षा अधिक भुगतान करना पड़ता है। उपयोगकर्त्ता शुल्क के उपयुक्त संग्रहण की असफलता वास्तव में जन सुविधाओं के लिए धनी व्यक्तियों को निर्धनों के समान भुगतान करने के कारण है (समस्या इन सुविधाओं के संचालन के तरीके में है) (थॉमस, 2004)। भूतकाल में नगरपालिका के कार्य कम थे तथा मूलभूत संरचनाओं पर भी अधिक दबाव नहीं था तथा स्थानीय संस्थाएँ जल वितरण की लागत सामान्य राजस्व से पूरा कर सकती थीं तथा सम्पत्ति मालिकों को एक सहमत स्तर तक निःशुल्क जल पूर्ति सुनिश्चित की गई थी। धनी व्यक्तियों से पहले स्तर पर भुगतान प्राप्त करना और फिर उच्च दर से भुगतान प्राप्त करना काफी कठिन था क्योंकि प्रभावी माँग काफी बढ़ गई थी और सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार नहीं हुआ था तथा संभावित भुगतानकर्त्ता अधिक भुगतान के लिए सेवाओं में सुधार की शर्त लगाते थे। फिर गुणवत्ता में सुधार संसाधनों की उपलब्धता पर ही हो सकता है और लोग अपर्याप्त क्षमता तथा घटिया सेवा के दोषपूर्ण चक्र उत्पन्न करके अधिक भुगतान करना नहीं चाहते। फिर जैसा कि दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में भी यह कहा गया है कि विशेषतः छोटे और मध्यम श्रेणी के नगरों में जल-आपूर्ति और मल निकास सेवाओं का संचालन खर्च भी वसूल नहीं हो पाता। व्यय और राजस्व का संतुलन नहीं है। कमज़ोर संग्रहण दक्षता तथा कम शुल्क के कारण प्रत्यक्षतः आर्थिक छूट देनी पड़ती है। जल आपूर्ति और स्वच्छता कार्य करने वाली संस्थाओं को कार्मिक और वित्तीय मामलों में कोई स्वायत्तता नहीं है। प्रभावशाली प्रबंधन के लिए आवश्यक सूचना प्रणालियों का प्रायः अभाव है। दायित्वों का कई अभिकरणों वाली नगरपालिका अर्थात् राज्य स्तर के बोर्डों/विभागों/निगम के बीच विभाजन है तथा शहरी स्थानीय संस्थाओं जैसे हुडको की तरफ से परियोजना के खर्च ऋण की गारंटी राज्य की इच्छा पर निर्भर करती है।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम ने कार्यों की सूची में और विषय शामिल (बारहवीं अनुसूची) कर शहरी स्थानीय संस्थाओं के नागरिक दायित्वों में काफी वृद्धि कर दी। बढ़े हुए दायित्वों के दृष्टिकोण से सेवाओं में सुधार तब तक प्रभावी नहीं हो सकता जब तक स्थानीय संस्थाओं को उपयुक्त सुधार में शामिल नहीं किया जाता तथा उन्हें निर्णय निर्माण स्वायत्तता, संसाधन तथा जहाँ कहीं कमी हो वहाँ (O&M) सुधार जैसे साधनों की उपलब्धता सुनिश्चित नहीं की जाती। इस संदर्भ में कुछ प्रस्तावित उपाय हैं। बाहरी सहायता, निजी क्षेत्र को शामिल करना और बाजार से धन लेना तथा शासन में सक्रिय भागीदार के रूप में समुदायों को शामिल करना। एक अन्य बड़ी समस्या यह है कि प्रशासनिक प्रक्रियाएँ अत्यधिक लम्बी और जटिल हैं जो अपनी स्थिति जानने में लोगों को निराश करती हैं तथा उन्हें संदेहवादी बनाती हैं। अतः अच्छे परिणाम प्राप्त करने और अदक्षता पर पलने वाले भ्रष्टाचार को भी कम करने के लिए प्रशासनिक प्रक्रियाओं को तर्कसंगत एवं सरल बनाने की आवश्यकता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि लोगों की भागीदारी से प्रशासनिक बाधाएँ काफी हद तक कम हो जाएँगी (अध्याय 6.2, भारत सरकार, दसवीं योजना, 2002-07)।

इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन है सूचना का अधिकार अधिनियम जो अभी तक सरकारी फाइलों में छिपी हुई सरकारी सूचनाएँ आम व्यक्ति को भी उपलब्ध कराने की गारंटी प्रदान करता है। इसके साथ ही दक्षता सुधारने के दृष्टिकोण से तथा प्रक्रिया का लोकतांत्रिककरण करने के लिए भी पारदर्शिता सुनिश्चित करने के माध्यम से प्रक्रिया के लिए ई-शासन भी आरंभ किया गया है।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2005) के मध्यवर्ती मूल्यांकन के दस्तावेज बताते हैं कि एक राष्ट्रीय ई-शासन प्रणाली आरंभ की जा रही है। इस परियोजना में प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग तथा लाभार्थी विभाग शामिल हैं। इसका उद्देश्य है बुनियादी सुविधाओं की कमी को दूर करना, अप्रचलित प्रक्रियाओं को समाप्त करना तथा उन्हें उपयोक्ता अनुकूल बनाने के लिए प्रक्रिया की पुनर्संरचना करना,

ई-शासन संचालकों को मजबूत बनाना, संस्थाओं को क्षमता निर्माण एवं प्रशिक्षण के लिए तैयार करना तथा उपयुक्त नियमों को लागू करना। इसके उपयोग का डिजाइन नागरिकों की आवश्यकताओं और अभिलाषाओं को पूरा करेगा तथा परियोजनाओं का व्यवस्थित कार्यान्वयन पूर्ववर्ती जटिल प्रक्रियाओं से कम जटिल होगा।

जहाँ तक सामाजिक बहिष्कार के प्रश्न का सम्बन्ध है उसके लिए प्रशासनिक मामलों में प्रभावशाली कथनों की अपेक्षा अच्छी संवैधानिक शिक्षा सेवाएँ तथा लड़कियों एवं वंचित वर्गों के बच्चों के लिए रोजगार के समान अवसर आवश्यक होंगे तथा इस सदंर्भ में विपरीत ऐतिहासिक रूकावटों को दूर करने के लिए राजनीतिक सशक्तिकरण भी आवश्यक होगा। कुमार (2004) के अनुसार नई आर्थिक नीति में इन वर्गों की उपेक्षा की गई है। लेखक का आरोप है कि इस बारे में प्रयास रोक दिए गए हैं क्योंकि राज्य सामाजिक क्षेत्र से पीछे हटने लगा है और इसकी अपेक्षा अब उसने औद्योगिक क्षेत्र (निगम क्षेत्र) की अनुकूल नीतियों पर ध्यान केन्द्रित किया है।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम स्थानीय शासन के सभी स्तरों पर एक-तिहाई पद तथा सभी अध्यक्ष पदों के एक-तिहाई पदों पर आरक्षण प्रदान करता है। इसके परिणामस्वरूप स्थानीय स्तर पर वर्तमान में भारत में 10 लाख महिला प्रतिनिधि हैं। राजनीतिक क्षेत्र में पर्याप्त महिलाओं के न आने का कारण यह है कि अधिकतम लाभ के लिए धन और बाहुबली वाली व्यवस्था में राजनीतिक दलों के लिए वे सुरक्षित दाँव नहीं बन पाती। दसवीं योजना (2002-07) के दस्तावेज में कहा गया है कि संसदीय भागीदारी बताती है कि महिला सदस्य महिलाओं के मुद्दे जैसे स्वास्थ्य, कल्याण, महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार, दहेज अपराध और मानवाधिकारों के उल्लंघन में वे अधिक सक्रियता से भाग लेती हैं। अतः और अधिक महिला सदस्य इन संदर्भों को निश्चित रूप से अधिक सक्रिय करेंगी।

शहरी प्रशासन का विकेन्द्रीकरण

विकास के लाभ सभी को विशेषतः जिनके लिए बनाया गया है को बढ़ाने का यह महत्त्वपूर्ण उपाय है। यह अपनी समस्याओं के समाधान हेतु शहरी प्रशासन के संपर्क में आने के लिए स्थानीय आबादी को सक्षम बनाता है। इससे प्रशासन के कई कार्यों का संचालन सहज हो जाता है। इसका महत्त्व किफायत, लोगों के निकट प्रशासंन में गति एवं दक्षता के लिए भी है जिससे शहरी विकास में जनता की व्यापक भागीदारी का मार्ग प्रशस्त होता है जोकि काफी महत्त्वपूर्ण है।

शहरी प्रशासन में जनता की भागीदारी अपरिहार्य है और उपयुक्त उपाय बनाए और अपनाए जाते हैं। यह निम्नलिखित तरीके से किया जा सकता है :

- लोगों के निर्वाचित प्रतिनिधि जैसे संसद सदस्यों और राज्य विधान मंडलों के सदस्यों को सक्रिय रूप से शामिल होना चाहिए जैसा कि भारतीय संविधान द्वारा प्रावधान किया गया है।
- ग़ैर-सरकारी संगठनों को आवश्यक समर्थन और विशिष्ट दायित्व प्रदान कर उन्हें अपनी भूमिका का प्रभावशाली ढंग से निर्वाह करने के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।
- समाज के लाभ के लिए प्रभावी कार्यान्वयन को सक्षम बनाने के लिए यथासंभव अधिकतम लोगों को सक्रिय रूप से संबद्ध होना चाहिए तथा प्रशासनिक साधनों के बारे में उन्हें अवगत कराते रहना चाहिए। लोकतांत्रिक प्रशासन, विकेन्द्रित शासन तथा लोक भागीदारी की संकल्पना सरल लगती है। फिर भी, चूँकि ये चीजें विचारधाराओं, सरकारी व्यवस्थाओं और लोगों की प्रकृति के अनुसार बनी हुई हैं अतः स्थानीय समस्याओं का ध्यान करते हुए काफी खोज कार्य जो विशिष्ठ भी हो सकता है, करने की आवश्यकता है।

इस बारे में की गई सिफारिशें

शहरी प्रशासन को अधिक लोकतांत्रिक, विकेन्द्रित और लोगों के अनुकूल होने के लिए मजबूत करने की सिफारिशें करना आसान नहीं है। फिर भी यहाँ कुछ विशेषताओं का सुझाव इस प्रकार है :

i) लोगों के अनुकूल नीतियों और कार्यक्रमों पर ज़ोर देना;

ii) समाज के सभी वर्गों विशेषतः निर्धन और महिलाओं की पहुँच सुनिश्चित करनी चाहिए;

iii) विभिन्न सेवाओं के लिए वहन करने योग्य शुल्क मुख्य मानदंड होना चाहिए और प्रयोगकर्त्ता के अनुकूल भी होना चाहिए।

iv) प्रशासन की लोगों के प्रति जिम्मेदारी मुख्य दायित्व होना चाहिए जिसे काफी हद तक लोगों को सूचित कर उनके सहयोग को प्रोत्साहित कर, उनकी समस्याओं का समाधान कर, उनकी आवश्यकताओं को अधिक संतुष्टि के साथ पूरा कर और सबसे अधिक उनकी निरंतर प्रशंसा और विश्वास प्राप्त कर सकने वाला स्वच्छ एवं पारदर्शी प्रशासन बनाकर पूरा किया जा सकता है (सिंह, 2004)।

नागरिक समाज की सक्रियतावाद का मूल्यांकन

एक तरफ लघुतम परिवार और दूसरी तरफ राज्य के बीच उत्तरदायित्व, प्रेरणा, सहयोग और समस्या समाधान आदि स्वस्थ संपर्क है। इसका अर्थ यह है कि नागरिक समाज लोकतांत्रिक प्रक्रिया के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। फिर भी उसी समय जैसा अनेक पर्यवेक्षकों ने देखा है कि नागरिक समाज की अपनी समस्याएँ हैं और लोकतंत्र के लिए नकारात्मक परिणाम हैं। इसके उदाहरण हैं अत्यधिक विशिष्टवाद, अलगाववाद, जातीय संघर्ष, स्वयंसेवी संगठनों पर अपनी नीतियों के अनुकूल अत्यधिक दबाव बनाना और स्वयंसेवी क्षेत्र में विद्यमान विशिष्ट वर्गों को समेकित या मिलाना जिससे उनके राजनीतिक प्रभाव को सीमित करना आदि। तीसरी दुनिया के कई देशों में ये और ऐसी ही अनेक समस्याएँ हैं जिससे परिपक्व लोकतंत्र के मार्ग पर अभी भरपूर अनिश्चितताएँ हैं। व्यक्ति को इस तथ्य का भी ध्यान रखना चाहिए कि विभिन्न ऐतिहासिक परंपराओं का पालन करने और हितों के विभिन्न रूपों के लिए भिन्न-भिन्न कार्य करने के कारण लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के रूप भिन्न हो सकते हैं। अंत में, यह ध्यान देने की बात है कि लोकतंत्र के रूप और विषयवस्तु को पूरी तरह पहले से निर्धारित नहीं किया जा सकता।

74वें संविधान संशोधन अधिनियम में सक्रिय मध्यस्थता करने और नकारात्मक ऐतिहासिक प्रवृत्तियों को बदलने का प्रयास किया गया है, क्योंकि व्यक्ति इससे प्रेरित हुआ है कि स्थानीय स्व-शासन वास्तव में भारत की स्वदेशी संस्कृति के मूल में है और मध्यकाल में अराजक काल से पूर्व प्राचीन ऐतिहासिक काल में औपचारिक संस्था के रूप में उन्नत हुआ जब प्रशासन अत्यधिक केन्द्रित था। वर्तमान काल तक अब पुनः इसके सशक्तिकरण पर ज़ोर दिया जा रहा है। मध्यकाल और ब्रिटिश काल में फिर से भारत में स्थानीय स्वशासन का ब्रिटिश सिद्धान्तों के अनुसार पुनः आविष्कार करने का निर्णय करने से पूर्व इसकी निरंतरता बाधित हुई।

3.3 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का भौगोलिक संदर्भ

इस कथन की संयुक्त राष्ट्र की परिभाषा 1960 के दशक में प्रसिद्ध भागीदारी के केन्द्र को उजागर करने के लिए भौगोलिक आयामों पर ध्यान केन्द्रित करती है। ध्यान दिया गया है कि कोई भी विकेन्द्रीकरण योजना विशेषतः भागीदारी और लोकतांत्रिक दृष्टिकोण से दोनों प्रक्रियाओं के विभिन्न अंशों के उपयुक्त मिश्रण पर निर्भर करती है। पार्कर कहता है कि "विकेन्द्रीकरण के किसी कार्यक्रम की सफलता के लिए राजनीतिक, आर्थिक और संस्थात्मक तत्वों के सही मिश्रण की आवश्यकता होगी" (पार्कर, 1950)।

भौगोलिक क्षेत्रों पर विश्वास करना एक अन्य आयाम है।

इसका सबसे अधिक लाभ यह है कि यह अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त प्रशासनिक इकाई या सीमा है जो विभिन्न क्षेत्रों के कार्य करने की गतिविधियों के लिए एक संस्थापित संदर्भ की संरचना प्रदान करती है। उनसे सम्बन्धित प्रशासनिक इकाइयाँ और संस्थात्मक संरचनाएँ होती हैं जो उनके साथ रहती हैं। जहाँ कोई व्यक्ति एक समान क्षेत्रों जैसे जल संसाधनों, जंगल संसाधनों, खनिज संसाधनों के बारे में वैज्ञानिक रूप से सोच सकता है वहीं कोई अधिक व्यावहारिक रूप से अंतरक्षेत्रीय विकेन्द्रित योजना बनाने के साधारण तरीकों के बारे में भी सोच सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रक्रियाओं में संसाधन क्षेत्रों की उपेक्षा की जाए। यह संभव है कि उन्हें एक अच्छी विकेन्द्रित योजना संरचना के साथ मिला दिया जाए। जहाँ पर एक जिला इतना बड़ा हो या ग्रामीण-शहरी आबादी का मिला-जुला रूप हो कि उन्हें विकास कार्यक्रमों से लाभ मिलना कठिन हो तो ऐसे जिले को दो भागों में विभाजित करना अभीष्ट हो सकता है। इसका एक रोचक उदाहरण कर्नाटक का है जहाँ पर योजना विभाग द्वारा राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए बंगलौर जिले की तरह दो जिले बनाए गए परन्तु बाद में इन्हें प्रशासनिक आधार पर भी स्वीकार कर लिया गया।

कुछ लोगों का तर्क है कि विकेन्द्रित योजना के लिए विभाजन को राज्य से अलग स्तर माना जा सकता है। जिले के एक इकाई के रूप में मिलने वाले कुछ लाभ विभाजन में भी हैं। ऐसा लगता है कि विभाजन कुछ राज्यों में अधिक उपयुक्त है। एक तरीका यह है कि राज्यों को अनुमति दी जाए कि उन्हें जो सुविधाजनक लगे वे विभाजन या जिले का चयन कर सकते हैं। असंतुलन को समाप्त करना एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। विचारधारा में एक क्षेत्र की विशेषताओं का ध्यान रखना पड़ता है। कार्य नीतियाँ बनाने के लिए जिलों के उपक्षेत्रों का अध्ययन किया जाता है। अतः जिला असंतुलनों को ठीक करने के लिए इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि विकेन्द्रित योजना को काफी हद तक उन क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता है जो पहले चरण में नए सिरे से कार्य करने का प्रयत्न करने की अपेक्षा किसी न किसी तरीके से पहले ही कर चुके होते हैं।

अब तक किसी न किसी रूप में एक अन्य महत्त्वपूर्ण लेकिन अत्यधिक उपेक्षित मुद्दा ग्रामीण शहरी संघटन का रहा है जबकि विकेन्द्रित योजना के साथ पर्याय के रूप में जिला योजना का प्रयोग किया जाता रहा है। जिला योजनाओं को केवल ग्रामीण योजना के रूप में समझा जाता है। आई आर डी पी तथा अन्य क्षेत्र-अभिमुखी योजनाएँ आरंभ करने से ग्रामीण गतिविधियों को संघटित विशेषतः छोटे और मध्यम श्रेणी के नगरों से संघटित करने की आवश्यकता एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन गया है। कुछ गतिविधियों के लिए और विपणन सुविधाओं या बैंक सेवाओं सहित कुछ सुविधाएँ प्रदान करने के लिए छोटे और मध्यम श्रेणी के नगरों को केन्द्रीय बिन्दुओं के रूप में कार्य करना पड़ता है। इस संदर्भ में जिला योजना के कार्य दल की सिफारिश है कि 10,000 से कम जनसंख्या वाले कस्बों को समग्र योजना एवं विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के उद्देश्यों से जिले का एक अभिन्न भाग समझना चाहिए।

इसके विपरीत व्यापक निर्धनता और बेरोजगारी वाले बड़े नगर हैं। जिनका सम्बन्ध अनेक क्रमिक कार्यों के दृष्टिकोण से राज्य स्तर की योजना से है जैसे माल गोदाम, डेयरी, कृषि अनुसंधान, कृषि उपकरण, औद्योगिक विकास, विद्युत उत्पादन और वितरण, सड़क परिवहन जैसे कार्य कुछ स्वायत्त संस्थाओं या अन्य सम्बन्धित विभागों/बोर्डों के द्वारा किए जाते हैं। राज्य स्तर की कुछ बड़ी परियोजनाओं की भी योजनाएँ हैं जो एक या अनेक जिलों में लागू की जाती हैं।

एक संपूर्ण राज्य भी योजना की एक इकाई के रूप में हो सकता है यद्यपि इसमें से कुछ कार्य किसी जिले में किए जा सकते हैं जिसमें से कुछ आधारभूत सुविधाओं की प्रकृति के तथा अन्य अंतिम रूप से तैयार उत्पाद की प्रकृति के होते हैं। यदि जिले में किए जाने वाले सभी विकास कार्यक्रम जिले की अन्य योजनाओं के साथ संघटित नहीं किए जाते हैं तो जिले में विकेन्द्रित योजना अपूर्ण होगी। जब

इनमें से कुछ गतिविधियाँ अधिक आवश्यक संयोजन प्रदान करती हैं यहाँ तक कि बुनियादी सुविधाएँ प्रदान करती हैं तो यह सब और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जिला स्तर पर विकेन्द्रित योजना के दायरे में इन सभी चीजों को लाने के लिए उपयुक्त संघटित प्रणालियों को विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए (कुमार, 2001)।

वर्तमान व्यवस्था के अनुसार स्थानीय शासन के प्रत्येक स्तर के अंतर्गत भौगोलिक क्षेत्र की सीमा काफी महत्त्वपूर्ण है। गाँव स्तर पर ग्राम पंचातय है, 100 गाँवों पर खंड पंचायत है और लगभग 1,000 गाँवों वाले जिले के लिए जिला परिषद होती है।

शहरी स्थानीय संस्थाओं की तीन श्रेणियाँ हैं; 3 लाख से अधिक की जनसंख्या वाले शहरों के लिए नगर निगम, इससे छोटे नगरों के लिए नगर परिषदें, तथा गाँवों से नगर बनने वाले गाँवों के लिए नगर पंचायते हैं।

3.4 आर्थिक संदर्भ

विकेन्द्रीकरण दक्ष और किफायती प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए, शीघ्र और वास्तविक निर्णय करने के लिए जो ग्रामीण विकास में शामिल लोगों की तरह बड़े और जटिल संगठनों के लिए पूर्वापेक्षित आवश्यक हो गया है। समय-समय पर अनेक निर्णय लेने होते हैं और ऐसे निर्णयों पर वर्णन किए जाने वाले तथ्य इतने अधिक होते हैं कि मुख्यालय में उन्हें एकत्रित करने की अपेक्षा निर्णय-निर्माण अधिकार अनेक क्षेत्रीय संगठनों या क्षेत्रीय संस्थाओं को हस्तांतरित करना आवश्यक हो जाता है। प्रायः बार-बार उत्पन्न होने वाली उन नौकरशाही बाधाओं से बचाव की आशा की जाती है जो उच्च अधिकार संकेन्द्रित संरचनाओं को बिगाड़ती है।

विकेन्द्रीकरण व्यक्ति को विशाल, दूरस्थ और वैयक्तिक नौकरशाही के विरुद्ध बचाव कर सकता है तथा एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज की तैयारी और आधार प्रदान करता है। विकेन्द्रीकरण को निर्णय निर्माण प्रक्रियाओं में पहलों और स्थानीय स्वायत्तता को पुनः स्थापित करने के कारण नौकरशाही का विरोधी कहा जाता है। विकेन्द्रीकरण राष्ट्रीय राजधानी के ऐसे दूरस्थ क्षेत्रों में सरकारी नीतियों का अच्छा राजनीतिक और प्रशासनिक प्रभाव भी छोड़ सकता है जहाँ प्रायः केन्द्रीय सरकार की योजनाओं का पता नहीं होता अथवा ग्रामीण लोगों द्वारा उनकी उपेक्षा की जाती है। विकेन्द्रीकरण विभिन्न राजनीतिक, धार्मिक, जातीय और जनजातीय समूहों के विकास की निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में अधिक भागीदारी प्रदान कर सकता है जो क्षेत्रों और प्रान्तों में स्थानीय सरकारों और निजी संस्थाओं में अधिक प्रशासनिक क्षमता का विकास करती है। इस प्रकार केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा प्रायः अच्छी तरह कार्य निष्पादन न करने वाले कार्यों को करने के लिए उनकी क्षमता में वृद्धि करता है जैसे राष्ट्रीय राजधानी का रखरखाव। विकेन्द्रीकरण अधिक लचीला, अभिनव और रचनात्मक प्रशासन बना सकता है। क्षेत्रीय, प्रान्तीय या जिला प्रशासनिक इकाइयों के पास नवीनताओं का परीक्षण करने और नई नीतियों और कार्यक्रमों को पूरे देश के लिए उपयुक्त घोषित करने से पूर्व कुछ क्षेत्रों में प्रयोग करने के अधिक अवसर रहते हैं। यदि प्रयोग असफल रहते हैं तो उसके प्रभाव छोटे से कार्य क्षेत्र में सीमित रहते हैं और यदि वे सफल हो जाते हैं तो उन्हें देश के अन्य हिस्सों में दोहराया जा सकता है (मीनाक्षी, 1994)।

आर्थिक संदर्भ (ग्रामीण और शहरी संस्थाओं का आर्थिक प्रबंध और धन प्रदान करना)

आर्थिक विकेन्द्रीकरण वास्तविक अर्थ में नहीं हुआ है क्योंकि अधिकतर ग्रामीण विकास कार्यक्रम केन्द्रीय रूप से प्रायोजित योजनाओं के रूप में कार्यान्वित किए जा रहे हैं। पंचायती राज संस्थाओं को उनको दिए गए धन के व्यय में उच्च स्तरीय निर्देशों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। विकास के "ऊपर से नीचे" और "नीचे से ऊपर" विचारधारा की तरफ बदलते माहौल से विकास संदर्भों की कार्य

सूची में स्थानीय स्तर की वास्तविकताओं की मान्यता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वित्तीय संसाधनों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य सामाजिक-आर्थिक विकास में कर्त्तव्य निर्वाह में लचीलेपन की झलक होना है। 1991-92 के आर्थिक सर्वेक्षण ठीक ही बताते हैं कि आर्थिक गतिविधि का केन्द्र वित्त क्षेत्र है, इसका स्वास्थ्य संपूर्ण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है (भारत सरकार, 1991-92)। एक उपयुक्त वित्तीय संसाधन आधार और पंचायती राज संस्थाओं के लिए इसका लचीलापन विकास प्रक्रिया के आधारभूत लोकतांत्रिककरण को सुनिश्चित करने का मुख्य संरचनात्मक घटक है (मुखर्जी, 1996)।

अशोक मेहता समिति (1978) का विचार है कि पंचायती राज संस्थाओं से अपेक्षित कार्य में अयोग्यता उनकी वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण है। स्थानीय सरकारों के लिए 1992 के संवैधानिक संशोधन में जहाँ तक वित्तीय मामलों का सम्बन्ध है इसमें भी पारंपरिक संरक्षक (गॉड फादर) राज्य सरकार से स्वायत्तता और स्वतंत्रता प्रदान करने का अच्छा प्रयास नहीं किया गया है। प्रथम तो संशोधनों में निम्न स्तर के लिए वैसे स्पष्ट वित्तीय प्रावधान नहीं किए गए हैं जैसे कि संविधान ने केन्द्र व राज्यों के लिए वित्तीय विभाजन किया है। अच्छी वित्तीय स्थिति की माँग के लिए केवल राज्य वित्त आयोग की संरचना सम्बन्धी प्रावधानों का आश्वासन दिया गया है। राज्य वित्त आयोग संसाधनों की उत्पत्ति नहीं कर सकता अपितु किसी तरफ वित्तीय घाटा होने की स्थिति में उसी धन को विभिन्न अनुपातों में वितरण की सिफारिश कर सकता है। दूसरा भ्रम यह है कि यह विभिन्न राज्यों में भारतीय स्थानीय सरकारों को निरंतर आय के संसाधनों के चौथे क्रम पर रखने की अनुमति प्रदान करता है। इसे स्थानीय सरकारों के लिए उपयुक्त विशेष स्रोतों से प्राप्त आय को सरल करना चाहिए।

पंचायती राज संस्थाओं के लिए वित्तीय हस्तांतरण आवश्यक है

राज्य सरकारों ने सुनिश्चित किया है कि प्रत्येक स्तर द्वारा किए जाने वाले कार्यों से सम्बन्धित राशि, जनसंख्या, कृषि के पिछड़ेपन और बेरोजगारी के आधार पर महत्त्वों एक सूत्र के माध्यम से वैज्ञानिक रूप से विनिर्दिष्ट किया गया है। अधिनियम की अनुसूची प्रथम के अनुसार ग्राम. पंचायतों को सामुदायिक विकास परियोजनाओं का कार्य सौंपा गया है जबकि अनुसूची द्वितीय और तृतीय के अनुसार क्रमशः TPS और ZPS को बुनियादी सुविधाओं के विकास में क्षेत्रीय असंतुलनों पर पर्यवेक्षण करने की विशेष भूमिका दी गई है। जिला परिषदों के पास योजना, पर्यवेक्षण और मूल्यांकन के लिए पर्याप्त कार्मिक होने के कारण उसे जिला योजना समितियों (DPC) के तंत्र के माध्यम से संपूर्ण जिले के लिए समन्वयकर्त्ता की भूमिका निभानी पड़ती है। ग्रामीण-शहरी दोनों वर्गों को संभालने और सीधे राज्य सरकार के अधीन कार्य करने के लिए जिला योजना समितियों को संपूर्ण जिले के व्यापक विकास के लिए कार्य करना पड़ता है।

अध्ययन दर्शाते हैं कि राज्य द्वारा आवंटित कुल सामूहिक राशि का पंचायती राज संस्थाओं को स्थानीय आवश्यकताएँ और प्राथमिकताएँ पूरी करने के लिए केवल 14 प्रतिशत ही मिलता है। इसलिए कार्य करने वाले पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित अपर्याप्त स्वायत्तता से असंतुष्ट रहते हैं। इसके अतिरिक्त राशि आबंटित करने के केन्द्रीय रूप से परिभाषित मानदंड भी स्थानीय स्थितियों के अनुकूल नहीं हैं। जिला परिषदें पूरी तरह से राज्य और केन्द्रीय धन आबंटन पर निर्भर करती हैं। यद्यपि वे बागवानी/मछली पालन आदि के माध्यम से अपनी आय के साधन बढ़ा सकती हैं लेकिन वह राज्य सरकार के पास जमा कराना पड़ता है। इस प्रकार उनके उद्यम और नए कार्यों के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं बचता। ग्राम पंचायतों को करों आदि के द्वारा अपने संसाधनों में वृद्धि करने के अधिकार दिए गए हैं। प्रत्येक ग्राम पंचायत को दिए जाने वाला 1 लाख रुपए का एक समान अनुदान बड़ी ग्राम पंचायतों के लिए अपर्याप्त रहता है जहाँ जल आपूर्ति योजनाओं और मार्गों/सड़कों की प्रकाश व्यवस्था का बिजली का बिल ही काफी अधिक मात्रा में हो जाता है। ग्राम पंचायतें अपने बजट का 26 प्रतिशत कर राजस्व से प्राप्त करती हैं जबकि राज्य सरकारों का 57 प्रतिशत अनुदान ग्राम पंचायत संसाधनों से

होता है। ग़ैर-कर राजस्व केवल 17 प्रतिशत है। चूँकि ग्राम पंचायतों के अपने संसाधनों को वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण पाया गया है अतः प्रशासनिक तंत्र को इसे मानने के लिए मजबूत करने की आवश्यकता है। पंचायती राज संस्थाओं को कमोबेश सरकारी धन व्यय करने वाला अभिकरण माना जाता है। धन आबंटन का कार्य निष्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार ग्रामीण विकास की गतिविधियाँ स्थायी नहीं हैं। यह अच्छा होगा कि पंचायती राज संस्थाओं को अपने संसाधन बनाने के लिए सशक्त बनाया जाए परन्तु उन्हें भी अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए शून्य आधारित बजट (धन आबंटन) प्रक्रिया का पालन करना चाहिए। वर्तमान में जिला परिषद (District Councils; ZP), टी पी और ग्राम पंचायत (GP) स्तर पर लेखा परीक्षण एकदम कठिन और कठोर प्रक्रिया है। पंचायती राज संस्थाओं का उत्साह और रचनात्मकता लेखों के रखरखाव और विवरण देने के कारण समाप्त हो जाता है। ग्राम पंचायत स्तर पर ग्राम सभाएँ ही सामाजिक लेखा जाँच का एकमात्र (अंतिम) साधन होना चाहिए। ग्राम पंचायत सचिवों को कागजी कार्य-अभिमुखी की अपेक्षा विकास-अभिमुखी होना चाहिए।

सामान्यतः स्थानीय सरकारों की आय के स्रोत/साधन

यद्यपि स्थानीय वित्त पर एक साथ विचार किया जाता है परन्तु नगर वित्त और पंचायत वित्त में गुणात्मक अंतर है। नगर वित्त शहरी संग्रहण के लिए परियोजनाओं को संसाधन सक्रियता, कर वसूली, कर संग्रहण तथा धन के उपयोग के लाभों से जोड़ता है जबकि पंचायत वित्त में अनेक समस्याएँ हैं। नगर वित्त पूँजी बोधक है; स्थानीय सरकारों का कुछ धन कराधान से और अधिकांश भाग राज्य सरकार से कर बंटवारे, सहायक अनुदान और ऋण से प्राप्त होता है। कर बँटवारा लचीले आधार पर होना चाहिए ताकि इसका हर साल पालन किया जा सके। सहायक अनुदान वित्तीय आवश्यकता अनुदान, सशर्त अनुदान या तुलनात्मक अनुदान हो सकता है। एक समग्रता के रूप में राज्य में क्षेत्रीय विसंगतियों को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न अनुदान प्रदान करके कम किया जा सकता है।

इस पृष्ठभूमि में स्थानीय स्वसरकारों को एक दृढ़ संवैधानिक स्थिति प्रदान करना आवश्यक हो जाता है और काफी प्रयासों के बाद पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति प्रदान करने वाले 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम पारित किए गए। इस प्रकार भारत में स्थानीय स्व-सरकारों को विकसित करने का दीर्घकाल से संजोया हुआ गांधीवादी स्वप्न संविधान में 73वाँ और 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा आंशिक रूप से पूरा हुआ। फिर भी यहाँ यह वर्णन करना आवश्यक है कि शहरी स्थानीय संस्थाओं और पंचायती राज संस्थाओं को एक सरकार के अधिकार प्राप्त नहीं हैं क्योंकि उन्हें कोई शासित अधिकार प्रदान नहीं किए गए हैं। ये मुख्यतः स्थानीय स्तर की संस्थाएँ हैं जो विकास और कल्याण कार्यक्रमों की पहचान करने, बनाने, लागू करने और उनका पर्यवेक्षण करने के लिए निष्कासित प्रतिनिधियों से बनी है। अतः राज्य सरकारों को शहरी स्थानीय संस्थाओं और पंचायती राज संस्थाओं को बनाने तथा उन्हें वे वित्तीय अधिकार और कार्यकारी दायित्व जैसा वे उपयुक्त समझें प्रदान करने के लिए कानून पारित करने की आवश्यकता है। 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के अनुसार राज्य सरकारों द्वारा करों का विभाजन, सहायक अनुदान, कर आबंटन के रूप में और उनकी वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए अन्य उपाय भी करना आवश्यक है।

भारत में 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों ने निःसंदेह वित्तीय संघवाद उत्पन्न किया है परन्तु इस संरचना में काफी अस्पष्टता है। इन संशोधनों के प्रावधान व्यय, कार्यों और राजस्व स्रोतों के बारे में स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट नहीं करते। यद्यपि उनका ग्यारहवीं और बारहवीं अनुसूचियों में वर्णन किया गया है तो भी वास्तविक आबंटन राज्य सरकारों के विधानों पर छोड़ दिया गया है। फिर भी, वित्तीय संघवाद की संरचना में जो समाप्त हुआ है कुछ हद तक संघीय वित्त अर्थात् राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय संस्थाओं को हस्तांतरित संसाधनों से सम्बन्धित प्रावधानों

में प्राप्त हो गया। 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियम राज्य वित्त आयोगों का प्रावधान करते हैं जिनसे आवधिक रूप से राज्य सरकारों से पंचायती राज संस्थाओं एवं शहरी स्थानीय संस्थाओं को वित्तीय हस्तांतरण की सिफारिश करेंगे। संघीय वित्त सम्बन्धी प्रावधान 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों की तुलना में अधिक मजबूत और कठोर आधार हैं।

स्थानीय सरकार के वित्तों में उभरती प्रवृत्ति पर विशेष चर्चा केन्द्रित करते हुए पता लगता है कि हाल ही के वर्षों में कुछ नई प्रवृत्तियाँ उभरी हैं। कर्नाटक में शहरी और ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के वित्त के बारे में अध्ययन करने के बाद ऐसी नई प्रवृत्तियाँ स्थानीय सरकार वित्त के क्षितिज पर नजर नहीं आतीं। इन संस्थाओं की वित्तीय समस्याओं को उजागर करने से पूर्व यहाँ यह वर्णन करना आवश्यक है कि 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के बावजूद सभी राज्य सरकारों ने स्थानीय संस्थाओं के चुनाव आयोजित करने के लिए आवश्यक कानून पारित नहीं किए हैं। फिर अनेक राज्यों ने वित्तीय हस्तांतरणों की सिफारिश करने के लिए राज्य वित्त आयोग नियुक्त किए हैं परन्तु उनमें से अधिकतर ने अभी तक अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की है और जिन राज्य वित्त आयोगों ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत भी कर दी हैं तो उनकी सिफारिशों पर कोई ठोस कार्यवाही नहीं हुई है। इसका अभिप्राय यह है कि कुछ राज्य सरकारें नव-निर्मित पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय आवश्यकताओं के प्रति पहले की तरह ही उदासीन हैं।

पहले यह जाँच करना उपयुक्त होगा कि इन स्थानीय संस्थाओं के वित्त के साथ क्या घटित होता है। यद्यपि पंचायती राज संस्थाएँ निरंतर अस्तित्व में नहीं रहती हैं। अतः शहरी स्थानीय संस्थाओं को प्राय राज्य सरकार द्वारा नियुक्त प्रशासकों के अधीन कार्य करना पड़ता है। वे वित्तीय कार्मिक हैं और इस प्रकार शहरी केन्द्रों में ग़ैर-कृषि आर्थिक गतिविधियों पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण राजस्व आधार अपेक्षाकृत अधिक मजबूत रहता है। लेकिन अधिकतर राज्य सरकारें और केन्द्र सरकार भी शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध राजस्व संभावनाओं का उपयोग करती हैं और इस प्रकार प्राप्त धन का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्र में व्यापक निवेश में और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब उन्मूलन कार्यक्रमों में कार्य करती हैं। केन्द्रीय और राज्य दोनों सरकारें शहरी स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त धन और यहाँ तक कि वहाँ रहने वाले लोगों को न्यूनतम बुनियादी नागरिक सेवाएँ भी प्रदान नहीं करती।

यह एक भावना है कि शहरी स्थानीय संस्थाएँ अपने संसाधन जुटा सकती हैं क्योंकि उनका विस्तृत महत्त्वपूर्ण कर आधार होता है। लेकिन दुर्भाग्य से राजस्व स्रोतों के संवैधानिक विभाजन ने शहरी और ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के लिए भी बहुत कम हिस्सा छोड़ा है। ऐतिहासिक रूप से मान्य तीन स्थानीय राजस्व स्रोत प्रत्यक्ष कर जैसे सम्पत्ति कर और मोटर वाहन कर अब उनके पास नहीं हैं। मोटर वाहन कर और मनोरंजन कर राज्य सरकारों द्वारा ले लिया जाता है और आंशिक क्षतिपूर्ति अनुदान उन्हें प्रदान किया जाता है। संपत्ति कर की अधिकतम दरों को प्रतिबंधित कर कम राजस्व प्रदान करने वाला बनाया जाता है जो नगर संस्थाएँ लागू कर सकती हैं। इस प्रकार शहरी स्थानीय संस्थाओं के वित्त में उभरती प्रवृत्ति होगी कि संपत्ति कर शहरी स्थानीय संस्थाओं का बड़ा राजस्व स्रोत बना रहेगा। प्रयोक्ता शुल्क आरंभ हो सकते हैं लेकिन यह बहुत धीमा होगा। परिणामतः आने वाले वर्षों में राज्य सरकारों से वित्तीय हस्तांतरण मुख्य स्रोत बना रहेगा। एक सुखद समाचार यह है कि केन्द्रीय सरकार ने दसवें वित्त आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने का दायित्व स्वीकार किया है। हम यह आशा करते हैं कि भावी राष्ट्रीय वित्त आयोग केन्द्र सरकार को अपने हिस्से में से कुछ हिस्सा स्थानीय संस्थाओं को प्रदान करने की सिफारिश करेंगे।

शहरी स्थानीय संस्थाओं के वित्त को सुधारने के लिए विशेषज्ञों ने अनेक सुझाव दिए हैं। जैसे आय प्रदान करने वाली सम्पत्ति बनाना। लेकिन विद्यमान किराया नियंत्रण कानूनों और दीवानी अदालतें सुगम होने के कारण ये अलाभकारी हो गए। शहरी स्थानीय संस्थाओं को संपत्ति कर और प्रयोक्ता

शुल्क तथा राज्य और केन्द्र सरकारों द्वारा प्रेषित वित्तीय संसाधनों पर आश्रित रहना होगा। फिर भी पूँजी कार्यों जैसे जल आपूर्ति और भूमिगत मल निपटान के लिए नगरपालिका ऋणपत्रों (बाण्डों) के माध्यम से ऋण कोश बनाना संभव है। लेकिन नगरपालिका ऋणपत्रों के लिए कुछ पूर्व शर्तें पूरी करना आवश्यक है। पहले नगर संस्था ऋणपत्र जारी करने के लिए वित्तीय रूप से सक्षम होनी चाहिए। दूसरे नगरपालिका ऋणपत्रों के माध्यम से बनाया गया कोश केन्द्र और राज्य सरकार के समन्वित ऋण कार्यक्रम से अलग होगा ताकि यह वित्तीय शहरी विकास योजनाओं में वृद्धि कर सके। तीसरे, यह नगरपालिका ऋणपत्रों में निवेश करने वालों को कर-छूट देने में उपयोगी हो सके।

पंचायती राज संस्थाओं के सदंर्भ में स्थिति निराशाजनक है। पंचायती राज संस्थाओं के तीनों स्तरों को सशक्त बनाने वाले विधान, जिला पंचायतों और तालुक पंचायतों को कोई राजस्व स्रोत प्रदान नहीं करते। राजस्व के अधिकतर संसाधन ग्राम पंचायतों को प्रदान किए जाते हैं। ग्राम पंचायतों के लिए शहरी सम्पत्तिकर के अनुरूप गृहकर राजस्व का मुख्य स्रोत है। राजस्व के अन्य स्रोत कुल मिलाकर असंगत हैं क्योंकि वे अधिक राजस्व अर्जित नहीं करते जैसे बीयर बनाने पर शुल्क, बैल गाड़ी, साइकिल पर कर और गृह निर्माण या मनोरंजन शो आयोजन पर शुल्क। इन सबसे अधिक राजस्व बढ़ोतरी नहीं होती। लेकिन ग्रामीण आवास और व्यावसायिक सम्पत्तियाँ तेजी से विकसित हो रही हैं यहाँ तक कि केरल, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडू, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गोवा के गाँवों में तो यह शहरी क्षेत्रों की तरह ही प्रभावशाली ढंग से आगे बढ़ रही हैं।

इस पृष्ठभूमि में हमने भारत में शहरी और ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय स्थिति को मजबूत करने के लिए क्या जानकारी प्राप्त की है? शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में विशिष्ट व्यावहारिक सम्पत्ति कर प्रणाली की योजना विकसित करनी आवश्यक है। यह आगामी वर्षों में एक महत्त्वपूर्ण राजस्व स्रोत होनी चाहिए। दूसरे, शहरी स्थानीय संस्थाओं तथा पंचायती राज संस्थाओं के लिए पानी की दरों से अलग अन्य विशिष्ट प्रयोक्ता शुल्कों की पहचान करना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इन शहरी स्थानीय संस्थाओं को अपनी त्वरित आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण अप्रत्यक्ष कर अपनाना चाहिए। तीसरे शहरी स्थानीय संस्थाओं और पंचायती राज संस्थाओं दोनों को अपनी आय अर्जित करने वाली सम्पत्तियाँ बढ़ाने के लिए ऋण बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके लिए राज्य सरकारों द्वारा किराया नियंत्रण के विद्यमान कानूनों में संशोधन करने तथा स्थानीय संस्थाओं को अपनी सम्पत्तियों से राजस्व अर्जित करने से रोकने के लिए निचली अदालतों में जाने के प्रयासों को रोकने के लिए कानूनों को कठिन बनाकर कानूनी सहायता प्रदान की जानी चाहिए। चौथे, बड़े शहरी केन्द्रों जैसे राज्य पूँजी शहरों को प्रोत्साहित करना उपयुक्त होगा ताकि वे वित्तीय रूप से मजबूत हों और नगरपालिका ऋणपत्रों के माध्यम से धन एकत्रित कर सकें। भारत सरकार को ऋणपत्रों के माध्यम से नगरपालिकाओं द्वारा लिए गए अतिरिक्त ऋण को अतिरिक्त ऋण ही समझना चाहिए। उसे उनके कुल बाजार ऋण का एक हिस्सा नहीं मानना चाहिए। तथापि विवशताओं के रहते हुए भी यह व्यवहार सरकारी संस्थाओं के सकल वित्तीय घाटे को कम करने के लिए निरंतर जारी रहना चाहिए। व्यय की तरफ नगरपालिकाओं के कार्यों के विभाजन से बचना चाहिए और स्वतंत्र रूप से कार्य करने वाली सभी शहरी विकास अभिकरणों को यथासंभव निर्वाचित नगरपालिका संस्थाओं के नियंत्रण में लाना चाहिए।

वित्तीय नियंत्रण

वित्तीय नियंत्रण के क्षेत्र में निम्नलिखित नीति विकल्प और सिफारिशें दी गई हैं। पहला, ग्राम पंचायतों द्वारा बजट अपनाने से पूर्व उसकी सम्बन्धित ग्राम सभा स्वीकृति आवश्यक होनी चाहिए। दूसरा, ग्राम सभा को ग्राम पंचायत के खर्च का एक सामाजिक लेखा जाँच करने और ग्राम पंचायत से कोई सूचना दस्तावेज माँगने का अधिकार होना चाहिए। तीसरा, स्थानीय सरकारों द्वारा अपना वार्षिक बजट अंतिम अनुमोदन के लिए राज्य सरकार के पास प्रस्तुत करने की अनिवार्यता समाप्त होनी चाहिए। निर्वाचित

संस्थाओं को अपना बजट अपनाने और मध्यवर्ती पुनः उपयुक्तता को देखने का भी पूरा अधिकर होना चाहिए। चौथा, पंचायती राज सरकारों के वार्षिक बजट का सम्बन्धित क्षेत्र की आवश्यकताओं का पंचवर्षीय विकास योजना के साथ समन्वय करने के प्रबंध में विद्यमान कमियों को देखने की आवश्यकता है। पाँचवा, स्थानीय स्तरों पर बजट बनाने और लेखा रखने के लिए राज्य सरकार या भारत के नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक द्वारा निर्धारित प्रारूप का पालन करना चाहिए। बजट प्रणाली और व्यावसायिक लेखा प्रणाली दक्षता के अपनाने से व्यय कार्यान्वयन की योजना एवं पर्यवेक्षण में अत्यधिक सहायता मिलेगी।

वित्त : पंचायती राज संस्थाओं का सार

पंचायती राज संस्थाओं का मूल तत्व स्थानीय स्व-सरकार की स्वतंत्रता में रहता है। स्थानीय स्व-सरकारी संस्थाओं को अपना विकास मार्ग चुनने का अधिकार है। इसके लिए वे योजना बनाते हैं तथा स्वतंत्र रूप से धन जुटाते हैं और अपनी सेवा शर्तों के अंतर्गत कार्मिकों को काम पर रखने और हटाने का कार्य करते हैं। इसके लिए आवश्यक उद्देश्य घोषित किए जाते हैं। यह आवश्यक है कि उनके पास अपने वित्तीय संसाधन हों तथा यह निश्चित हो कि वे सहायक अनुदान जैसे दान आदि पर खर्च नहीं किए जाएँगे। दूसरा, उन्हें जिन्हें वे अपने तरीके से चुनें। इस वित्त को ऐसी विकास और रखरखाव योजनाओं पर व्यय करने की छूट होनी चाहिए (गिरगलानी, 1994)।

धन पंचायती राज संस्थाओं की अनिवार्य शर्त बन गया है। हिक्स (1961) ने ठीक ही देखा है, "यदि स्थानीय संस्थाओं को आर्थिक और सामाजिक विकास में पर्याप्त भूमिका निभानी है तो उनके पास पर्याप्त धन उपलब्ध होना आवश्यक हैं"। जय प्रकाश नारायण ने भी पर्याप्त संसाधनों की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था। उसने कहा कि "इन संसाधनों के अभाव में पंचायती राज संस्थाएँ सही तरीके से प्रशासन नहीं चला सकती है" (नारायण, 1961)। जैसा कि 73वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम में विचार किया गया है कि पंचायती राज संस्थाएँ आर्थिक योजना और विकास के संदर्भ में स्थानीय स्वसरकार की संस्थाएँ हैं" (गिरगलानी, 1994)। विकेन्द्रित योजना पंचायती राज वित्तीय प्रबंध योजना से सम्बन्धित है।

पंचायत वित्त की समितियाँ

पंचायतों की वित्तीय स्वायत्तता स्थापित करने के लिए सुझाव प्रदान करने हेतु विभिन्न समितियों और आयोगों का गठन किया गया है। इन सुझावों के संदर्भ में राज्यों ने अपने प्रस्तावों में उपयुक्त प्रावधान बनाए हैं और राज्यों ने अपने पंचायती राज अधिनियमों में उपयुक्त प्रावधान किए हैं (महिपाल, 1996)।

वित्तीय जाँच समिति

1951 में स्थानीय वित्तीय जाँच समिति ने इस समस्या का अध्ययन किया तथा पंचायत क्षेत्र में एकत्र भूराजस्व तथा अचल सम्पत्ति के हस्तांतरण पर लागू अधिभार के 15 प्रतिशत शर्त रहित आबंटन की पंचायतों को हस्तांतरित करने की सिफारिश की। पंचायतों को अपने अधिकार क्षेत्रों में कुछ कर लगा कर अपने संसाधन उत्पन्न करने के लिए सशक्त बनाया गया।

कराधान जाँच समिति

1954 में कराधान जाँच समिति ने कुछ कर जैसे सम्पत्ति कर, व्यवसाय कर, समाचारपत्र को छोड़कर विज्ञापन कर, मनोरंजन कर, सम्पत्ति हस्तांतरण कर आदि पंचायतों के लिए आरक्षित करने की सिफारिश की थी।

संथानम समिति

1963 में इस समिति ने पुरज़ोर सिफारिश की थी कि इन संस्थाओं की स्थिरता और विकास के लिए स्थायी और बढ़ते संसाधन होना आवश्यक है जिनका उपयोग और विकास पूरी तरह उनके अधिकार में हो।

अशोक मेहता समिति

1978 में अशोक मेहता समिति ने सिफारिश की कि सरकारी सहायता के अतिरिक्त पंचायतों को स्वयं अपने पर्याप्त स्रोत सक्रिय करने चाहिए क्योंकि कोई भी लोकतांत्रिक संस्था बाहरी संसाधनों पर निरंतर नहीं चल सकती।

सिंघवी समिति

1986 में सिंघवी समिति तथा अन्यों ने अनिवार्य और वैकल्पिक शुल्कों के स्वरूप का सुझाव दिया। उन विषयों की सूची दी जाए जिनके संदर्भ में कर और शुल्क लागू करने के अधिकार पंचायती राज संस्थाओं को दिए जाए जिसके साथ यह प्रावधान हो कि निर्धारित अवधि के लिए हो। पंचायती राज संस्थाओं की तरफ से राज्य सरकारें शुल्क लागू करेंगी और वसूल करेंगी तथा प्रत्येक राज्य में वित्त आयोग की सिफारिश के आधार पर वितरण करेंगी (जैन 1996)।

वित्त आयोग

यह सुनिश्चित करने के लिए कि इसकी योजना का उपयुक्त कार्यान्वयन हो रहा है 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने प्रत्येक राज्य में हर पाँच वर्ष में वित्त आयोग की स्थापना को अनिवार्य किया है जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति का मूल्यांकन करेगा और निम्नलिखित पर विशेष सिफारिश करेगा :

क) परिचालित किए जाने वाले नियम

   i) राज्य द्वारा लागू कुल कर, शुल्क, चुंगी और फीस की प्राप्तियों का पंचायती राज संस्थाओं एवं राज्य के मध्य बँटवारा;

   ii) पंचायतों को आबंटित किए जा सकने वाले या उनके द्वारा विनियोजित करों, शुल्कों, चुंगियों और फीस का निर्धारण; और

   iii) राज्य के समेकित कोष से पंचायतों को सहायक अनुदान।

ख) पंचायतों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक उपाय करना,

ग) प्रत्येक राज्यपाल इस अनुच्छेद के अंतर्गत आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश और इस पर की जाने वाले कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन के साथ राज्य के विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करेगा।

कर्नाटक सरकार द्वारा गठित राज्य वित्त आयोग (State Finance Commission) ने 1996 में अपनी रिपोर्ट में सुझाव दिया कि प्राप्त अपने सकल ग़ैर कर-राजस्व का 36 प्रतिशत हिस्सा स्थानीय संस्थाओं में 80 / 20 के अनुपात में क्रमशः ग्रामीण और शहरी स्थानीय संस्थाओं को हस्तांतरित किया जाए। राज्य वित्त आयोग का गठन डॉ. जी. थिमैया की अध्यक्षता में सरकार द्वारा गठित किया गया था।

राज्य वित्त आयोगों के समक्ष मुद्दे

कार्य आबंटन के अनुरूप संसाधनों की सिफारिशें करने द्वारा स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को सक्षम बनाने में राज्य वित्त आयोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। चूँकि वे सिफारिश करने की प्रक्रिया में होते हैं अतः महत्त्वपूर्ण विषयों की पहचान करना उपयुक्त होगा :

- योजना और ग़ैर-योजना कोषों विशेषतः वित्त विभाजन के संदर्भ में कितना अंतर करना तर्कसंगत है?
- राज्य और स्थानीय संस्थाओं के बीच विभाज्य राज्य कर, चुंगी आदि की पहचान कैसे की जाए?
- क्या ऐसा विभाजन कर-वार या संग्रहण की उत्पत्ति के आधार पर या एक नियम के आधार पर किया जाना चाहिए?
- क्या नियम के आधार पर ऐसे विभाजन के लिए चुने गए समस्त राज्य-करों का एकत्रीकरण और आबंटन स्थानीय संस्थाओं पर होना चाहिए?
- क्या सभी करों, लागू चुंगियों आदि की निवल प्राप्तियाँ, जिसे राज्य की समग्र आय कहा जा सकता है को एक नियम के आधार पर राज्य सरकार और स्थानीय संस्थाओं के बीच विभाजित किया जाना चाहिए?
- यदि निबल आय को वितरित किया जाना है तो राज्य और स्थानीय संस्थाओं के हिस्सों को कैसे निर्धारित किया जाए?
- शहरी और ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के बीच आय को किस आधार पर विभाजित किया जाए?
- पंचायती राज के तीनों स्तरों के बीच लम्बवत विभाजन का आधार क्या होना चाहिए और विभिन्न प्रकार की शहरी स्थानीय संस्थाओं के बीच भी विभाजन कैसे होता है?
- यदि विभाजन किसी नियम के आधार पर होना है तो एक अच्छा नियम कैसे बनाया जाए?

प्रो. एम. ए. ओमैन ने सुझाव दिया कि वित्त आयोग को संसाधन हस्तांतरण की सिफारिशं करते समय निम्नलिखित मानदण्डों पर विचार करना चाहिए (ओमैन, 1996)।

i) स्वायत्तता

विकेन्द्रीकरण का मूल तत्व है स्व-शासन और स्वायत्तता। हस्तांतरण प्रणाली किसी भी रूप में आश्रित होने के लक्षण वाली न हो। वित्तीय व्यवस्था और अपने संसाधनों की सक्रियता स्वायत्तता की कुंजी है।

ii) समानता

संसाधन सक्रियता और अंतरसरकारी संसाधन हस्तांतरण पर विचार करते समय प्रत्येक की आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक से प्राप्ति भी समानता की प्रसिद्ध उक्ति है। यह ध्यान रखना चाहिए कि पंचायतें आकार, संसाधनों और विकास प्राप्ति के संदर्भ में प्रत्येक स्तर पर काफी असमान होती हैं। अत्यधिक क्षेत्रीय असमानताओं में विकेन्द्रीकरण ऐसी स्थितियों में वांछित परिणाम प्रदान कर सकता है।

iii) पूर्व जानकारी होना

पंचायती राज संस्थाओं को हस्तांतरित की जाने वाली राशि और समय की पूर्व जानकारी होनी चाहिए ताकि वे योजना, बजट और अपनी गतिविधियों के कार्यान्वयन सम्बन्धी प्रावधान बना सकें। अनियमित भुगतान दक्षता को बढ़ाने वाला नहीं होता। प्रायः यह होता है कि आबंटित राशि का भी भुगतान नहीं किया जाता। फलतः वह अतिदेय हो जाता है और अंततः यह उनके लिए स्थायी रूप से समाप्त हो सकता है।

iv) दक्षता

संसाधन हस्तांतरण को इस तरह बनाया जाए जिससे प्रबंधन में दक्षता आए और अदक्षता एवं खर्चीली परम्पराएँ निरुत्साहित हों। हस्तांतरण प्रणाली अंतराल पूरा करने वाली विचारधारा" बन कर नहीं रहनी चाहिए।

v) अवशोषक क्षमता

संसाधनों का हस्तांतरण प्राप्तकर्त्ता पंचायत की उपयोगिता क्षमता के अनुरूप होना चाहिए (इसमें कार्मिकों की उपलब्धता शामिल है)।

vi) सरलता

अंतरसरकारी संसाधनों का हस्तांतरण नियम सरल एवं पारदर्शी होना चाहिए।

vii) प्रोत्साहनों को बढ़ावा

संसाधनों की गतिशीलता को प्रोत्साहित करने और व्यर्थ एवं खर्चीली परम्पराओं को दंडित करने के पर्याप्त अंतर्निहित प्रबंध होने चाहिए। विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त की गहन आवश्यकता है जो केन्द्र से राज्यों तक व्याप्त हो। पंचायती राज संस्थाओं की स्वतंत्रता और स्वायत्तता केवल राजनीतिक (लोकतांत्रिक) विकेन्द्रीकरण से नहीं रखी जा सकती यद्यपि यह आवश्यक है और इसे प्राप्त करना चाहिए (नूरजहाँ, 1996)।

अमित वर्धन (1996) ने पंचायत राज वित्त से सम्बन्धित समस्याओं की तरफ ठीक ही संकेत किया जिनकी विस्तृत रूप से जाँच आवश्यक है।

कर लागू करने में इच्छा/योग्यता का अभाव

सामान्यतः करों का भुगतान करना आवश्यक है जिसके लिए कर लागू करने वाले अधिकारियों की तरफ से कोई प्रत्यक्ष प्रतिपूर्ति स्थापित नहीं की जा सकती। जबकि उनके भुगतान में प्रवृत्ति टालमटोल करने की होती है अतः कर प्रवर्तन तंत्र की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। पंचायती राज संस्थाओं को ऐसी कोई तंत्र प्रणाली उपलब्ध नहीं है। वे करों का भुगतान न करने वालों के विरुद्ध अभी तक कोई कार्यवाही नहीं करते। इसके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण करदाता ग्रामीण आबादी के उच्च आर्थिक वर्ग के होते हैं। यह विशेष रूप से शक्तिशाली वर्ग हैं जिनसे कर एकत्रित करना बड़ा कठिन कार्य है।

राज्यों की क्षीण आर्थिक स्थिति

जहाँ राज्य सरकारों द्वारा प्रदान की जाने वाले सहायक अनुदानों का सम्बन्ध है, यह ध्यान रखना चाहिए कि स्वयं राज्य सरकारों के वित्त ही घीसड़ रहे हैं। वे लगातार कई वर्षों से व्यापक बजट घाटे में चल रहे हैं।

1) कमज़ोर कर आधार

संपत्ति, व्यवसाय, आय और वाहनों के रूप में स्वयं कर का आधार अधिक व्यापक नहीं है जो ग्रामीणों का निम्न जीवन स्तर बनाता है। यद्यपि समय के साथ निर्धनता अनुपात कम हुआ है तो भी पंचायती राज संस्थाओं द्वारा कर संग्रहण वृद्धि में आय व संपत्ति में सुधार की यह फलक नहीं मिलती। राज्य और पंचायती राज संस्थाओं की लोकप्रिय प्रवृत्तियाँ कर दरों के वैज्ञानिक संशोधन को रोकती हैं।

2) राज्यों की प्रतिकूल मनोवृत्ति

सामान्य रूप से यह अनुभव रहा है कि राज्य सरकारों ने अपना बकाया नहीं चुकाया है। पंचायती राज संस्थाओं न बनाने या हटाने या अपने कार्यों को सार्थक उन्हें तरीके से काम करने योग्य बनाने के लिए पर्याप्त अधिकार और शक्ति प्रदान नहीं करने के कई उदाहरण हैं। इस प्रकार राज्य सरकारों द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को प्रदत्त अल्प राशि से विपरीत मनोवृत्ति स्वतः प्रकट हो जाती है।

3) ग्रामीण उद्योगों का अभाव

पंचायती राज संस्थाएँ स्थानीय व्यवसायों के माध्यम से राशि जुटाती हैं। फिर भी इनकी संख्या और क्षेत्र काफी सीमित हैं। सहकारिता के आधार पर स्थानीय संसाधनों पर आधारित उत्पाद निर्मित करने के लिए लघु औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने या उन्हें कृषि आधारित उद्योग बनाने के लिए गहन प्रयास नहीं किए गए हैं। ग्रामीण औद्योगिकीकरण के अभाव में उच्च कराधान की अधिक गुंजाइश नहीं है।

ग्रामीण समुदाय की उदासीनता

पंचायती राज संस्थाओं के सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए ग्रामीण समुदाय की भागीदारी बहुत आवश्यक है। दुर्भाग्य से इसका अभाव है। जो स्वतः पंचायती राज संस्थाओं कोषों में स्वेच्छा से किए गए अल्प धन के योगदान से पता लगता है। पंचायती राज संस्थाओं की वित्तीय स्वायत्तता सुनिश्चित एवं सुरक्षित करने के लिए उन्हें संयुक्त धन कोषों से मुक्त किया जाए और नए संसाधन जैसे ठेकेदारी गतिविधियों, परियोजना सम्बन्धित ऋणों, जनता का सहयोग, कर बंटवारा, कर आबंटन तथा कर संग्रहण के लिए तुलनात्मक अनुदान प्रोत्साहन आदि से आय बढ़ाने को प्रोत्साहित किया जाएं (भारत सरकार, दसवें वित्त आयोग की रिपोर्ट, 1994)।

सारांशतः तर्क दिया जा सकता है कि भारत में स्थानीय संस्थाओं की सफलता अधिकांशतः उस सीमा पर निर्भर करती है जिसमें आबंटित कार्य वित्तीय स्वायत्तता के सिद्धान्त के अंतर्गत संसाधनों के अनुरूप हो। राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर हस्तांतरित संसाधन केवल एक विकल्प है। राज्य सरकारों की क्षीण होती वित्तीय स्थिति को देखते हुए विशेषतः राज्य सरकारों की मनोवृत्ति उदासीन होने पर दीर्घकाल तक इससे अधिक सहायता नहीं मिलेगी। इसलिए स्थानीय संस्थाओं को आंतरिक संसाधनों को सक्रिय करने की योजना बनानी होगी। इस प्रक्रिया को पूरे भारत में ग्रामीण स्तर तक सीमित नहीं रखा जा सकेगा। भारत में ऊपर से नीचे की तरफ विकेन्द्रीकरण को यदि आसानी से प्राप्त किया जा सके तो यह परिणाम तर्कसंगत लगता है कि स्थानीय संस्थाओं को राष्ट्रीय स्तर पर एक शक्तिशाली महत्त्वपूर्ण समूह के रूप में संगठित होना होगा।

3.5 लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण : अच्छे शासन के साधन

राजनीति शास्त्र और लोक प्रशासन के साहित्य में अच्छा प्रशासन बहुत प्रचलित संकल्पना हो गई है। अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा भी इसका काफी उपयोग किया जाता है। भारतीय राज्य व्यवस्था भी स्वयं अच्छे प्रशासन के सिद्धान्त और अभ्यास के प्रति प्रतिबद्ध है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के संवैधानिककरण जिसे प्रसिद्ध पंचायती राज के नाम से जाना जाता है के पीछे एक मुख्य उद्देश्य 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से ग्रामीण स्थानीय सरकार व्यवस्था में अच्छे शासन को बढ़ावा देना था। आशा थी कि इस कदम से ग्रामीण शासन में दक्षता, जिम्मेदारी, पारदर्शिता और संवेदनशीलता सुनिश्चित होगी। यह भी आशा थी कि पंचायती राज की नई व्यवस्था ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में न केवल लोकप्रिय भागीदारी सुनिश्चित करेगी अपितु यह भी सुनिश्चित होगा कि लाभ ग्रामीण निर्धन वर्ग को प्राप्त हों। इक्कीसवीं शताब्दी

भारत को सरकार के संदर्भ में गहन समीक्षा का अवसर प्रदान करती है ताकि वह देश के समक्ष भावी चुनौतियों का सामना कर सके (गहलौत, 2005)। यह तभी संभव है जब वर्तमान सरकार तीव्र तकनीकी परिवर्तन का, सार्वभौमिक प्रतिस्पर्धा का और ज्ञान आधारित अर्थव्यबस्था का सामना करने के लिए अपनी मनोवृत्ति बदलने को तैयार हो। वर्तमान परिदृश्य के संदर्भ में यह स्मरण करना सार्थक है कि मूल्य आधारित पारदर्शिता अच्छे शासन की पहली शर्त है और केन्द्र से लेकर नीचे आधारभूत स्तरों तक लागू होनी चाहिए।

विश्व बैंक ने अच्छे शासन के अनेक संदर्भों की पहचान की है जिनका विकसित और विकासशील दोनों देशों के लिए बहुत महत्त्व है। ये तथ्य/राजनीतिक और प्रशासनिक संदर्भों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं जो निम्नलिखित हैं :

1) राजनीतिक जिम्मेदारी
2) संबद्धता से मुक्ति और भागीदारी, कानून का शासन और स्वतंत्र न्यायपालिका
3) नौकरशाही की जिम्मेदारी
4) सूचना और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
5) दक्षता और प्रभाविकता उत्पन्न करने वाली सुदृढ़ प्रशासनिक प्रणाली
6) सरकार और नागरिक सामाजिक संगठनों के बीच सहयोग (बलंट, 1995)।

इसी प्रकार नया लोक प्रबंधन नीति पर नहीं अपितु प्रबंध व्यवस्था, कार्य निष्पादन मूल्यांकन और दक्षता पर ध्यान केन्द्रित करता है। यह सार्वजनिक नौकरशाही को अभिकरणों में परिवर्तित करने का कार्य करता है जो परस्पर प्रयोक्ता अदायगी के आधार पर कार्य करते हैं (लेन, 1995)। यदि हमें अच्छा शासन चाहिए तो हमें नौकरशाही को संवेदनशील बनाना होगा तथा अंततः लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण प्राप्त करना होगा। नौकरशाही भारतीय लोक प्रशासन का एक अभिन्न अंग बन गई है क्योंकि सिविल नौकरशाही (कार्मिक) ही सरकारी नीतियों को लागू करने और निष्पादन करने, विशेषतः समाज के वंचित वर्गों के लिए लागू करने का कार्य करती है।

पंचायती राज के नाम से प्रसिद्ध लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की स्वीकृत संकल्पना के साथ विशेषतः भारत के संविधान के 73वें संविधान संशोधन से पूर्व क्या गलत हुआ है :

- संपूर्ण भारत में पंचायती राज का स्वरूप एक जैसा नहीं था क्योंकि प्रत्येक राज्य अपनी राजनीतिक प्रशासनिक परिस्थितियों के अनुकूल स्वरूप अपनाता था।
- जबकि कुछ राज्यों में ये संस्थाएँ आरंभ हुई हैं और आरंभिक अवस्था में महत्त्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा है तथा अधिकतर राज्यों में इन्हें बनाए रखने में सारी ऊर्जा समाप्त कर दी थी।
- इनकी कार्य शैली से पता लगता है कि इन संस्थाओं के पास पर्याप्त अधिकार और संसाधन नहीं थे।
- बजट का अधिकांश भाग उन अनुदानों से बनता था जो राज्य सरकार द्वारा उन योजनाओं के लिए प्रदान किए जाते थे जिनकी रूपरेखा केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा बनाई जाती थी और जिनके बनाने में उनकी कोई भूमिका नहीं होती थी।
- सरकारी कार्मिकों और ग़ैर-सरकारी कार्मिकों के बीच छोटे-छोटे मामलों पर संघर्ष, तनाव और टकराव होना सामान्य बात थी।
- वास्तव में कहीं भी लोगों को अधिकार हस्तांतरित नहीं किए जाते थे।

3.6 सारांश

लोकतांत्रिककरण और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के सिद्धान्त कोई विशेष रूप से नए नहीं हैं। विश्व के कुछ भागों में विशेषकर पश्चिमी यूरोप (बीसवीं शताब्दी के अधिकांश हिस्सों में जर्मनी, स्पेन और पुर्तगाल को छोड़कर) और उत्तरी अमेरिका में लोकतंत्र और लोकतांत्रिक प्रक्रिया समाज के मूल्यों और नियमों में समाहित है। और इस प्रकार इन्हें सफलता के पर्याप्त साधनों के साथ दैनिक राजनीति एवं प्रशासन के मार्गदर्शी सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया जा चुका है। परन्तु हाल ही के वर्षों में लोकतांत्रिककरण प्रक्रिया को नवीकृत बल मिला है। 1980 के दशक के आरंभ से यह शैक्षिक और संस्था निर्माण बहस का सर्वप्रथम विषय रहा है। इस दशक में पश्चिमी यूरोप एवं सोवियत संघ में साम्यवाद का अंत हुआ तथा तीसरी दुनिया के अनेक देशों में इसके साथ ही सत्तावादी और एक दलीय राजतंत्र निरस्त और/या उसका ह्रास हुआ। एक अर्थ में यह लोकतंत्र से संबद्ध सामान्य प्रक्रिया और पश्चिमी यूरोप तथा तीसरी दुनिया के देशों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया है।

सारांशतः हम कह सकते हैं कि पंचायती राज के संस्थात्मक रूप में विकेन्द्रीकरण अपने सभी आयामों और भिन्नताओं के साथ भी इस देश में स्थित है। पंचायती राज संस्थाओं में राजनीतिक दलों के प्रवेश में इन्हें संघटित राजनीतिक संरचना के ऊपरी सोपान के आगे नतमस्तक बना दिया। यह शीर्ष से निकला और इसकी रचना निम्न से नहीं हुई जैसा कि गांधीजी ने कल्पना की थी। तो भी भारतीय संविधान में 73वें संशोधन अधिनियम ने पंचायती राज संस्थाओं को न केवल संवैधानिक स्थिति प्रदान की अपितु सभी राज्यों में पंचायती राज की एक समान संरचना प्रदान की। पंचायती राज संस्थाओं को दिए जाने वाले अधिकारों की सूची बनाई तथा प्रत्येक राज्य में वित्त आयोग स्थापित करने के प्रावधान भी बनाए। इसने राज्य में स्थित आबादी के अनुपात में अनुसूचित जातियों के लिए पदों और सदस्यता का आरक्षण भी किया। वास्तव में पंचायती राज संस्थाओं के चरित्र में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ।

इस संदर्भ में केवल औपचारिक परिवर्तन ही हुए हैं। न तो अधिकारों का हस्तांतरण हुआ है और न ही संसाधनों का। महिलाओं और अनुसूचित जातियों को निर्णय निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी के अभाव में सशक्त नहीं बनाया गया है। भारत में प्रचलित यह लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण न तो चरित्र में लोकतांत्रिक है और न ही विकेन्द्रित विषय। इसके अतिरिक्त इसके कार्य अत्यधिक अवैयक्तिक एवं नौकरशाही के तरीके वाले हैं। राज्यतंत्र का अभी तक कोई आदर्श नहीं है जो विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में अंतः रूप से इस प्रकार निर्मित हो जो अत्यधिक प्रकार की गतिविधियों में अपना भाग्य निधारित करने के लिए लोगों के अधिकार उत्पन्न करता हो।

जब 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम लागू हुआ तो अधिक लोगों में नहीं तो भी देश में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के तीव्र प्रशंसकों में इसके अवमूल्यन की अनुभूति थी। आखिरकार पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति प्रदान करने की माँग पिछले 25 वर्षों से अधिक थी। यह एक साहसिक कदम था। हमें यह विश्वास दिलाया गया कि यह न केवल पंचायती राज संस्थाओं को स्थाई बनाएगा अपितु देश को धीरे-धीरे वास्तविक लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की ओर ले जाएगा। सबसे ऊपर उपेक्षित समुदायों जैसे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और सामान्यतः महिलाओं का पंचायती राज संस्थाओं में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए प्रस्तुत की गई कोटा प्रणाली को भागीदारी विकेन्द्रीकरण के लिए राजनीतिक वर्गों की अतिरिक्त प्रतिबद्धता के रूप में अनुभव किया गया। निश्चय ही देश में प्रतिनिधितात्मक लोकतांत्रिक प्रणाली का सामाजिक आधार बढ़ाने का यह पहला गंभीर प्रयास था। जिसे हमने कई बार बताया है।

फिर भी इन उपायों का प्रभाव सीमित था। अनेक राज्यों ने कई कारणों से सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया। पंचातयों का कार्य निरंतर प्रभावहीन रहा। यहाँ तक कि जिन राज्यों में वे अपेक्षाकृत अच्छा कार्य कर रही थीं वहाँ भी नौकरशाही के तरीके से नियंत्रित और सरकार के धन से वितरित शस्त्रों के बल पर केवल लोकतांत्रिक संरचना के दिखावे के रूप में कार्य कर रही थीं। इन संस्थाओं को पुनर्जीवित करने और संवेदनशील प्रशासन प्रचलित करने की आवश्यकता है। फिर भी 1990 के दशक में गरीबी हटाओ कार्यक्रमों को सुव्यवस्थित करने के संदर्भ में यह और भी महत्त्वपूर्ण हो गया था। स्थानीय संस्थाओं को संवैधानिक स्थिति प्रदान करने के आधार पर संविधान द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को एक संवैधानिक संरचना प्रदान करना आवश्यक है। अंततः यह 1992 में भारतीय संविधान में 73वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से प्राप्त किया गया (मुखर्जी, 1994)। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम ने समुदायों को योजना निर्माण, कार्यक्रमों पर विचार और लागू करने में तथा उनकी विकास परियोजनाओं में भागीदारी में समर्थ बनाने के लिए गाँव से लेकर जिला स्तरों तक इन लोकप्रिय संस्थाओं (पंचायती राज संस्थाओं) को संस्थात्मक बनाने की ऐतिहासिक घटना थी। यह संशोधन राज्य सरकारों को पंचायती राज की तीन स्तरीय संरचना की स्थापना करने और ऐसे कदम उठाने का विशेष शासनादेश करता है जो अंततः प्रशासन के आरंभिक और मध्य स्तरों पर स्वशासन संस्थाओं की भूमिका ग्रहण करने में और वास्तविक लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण बनाने में समर्थ बनाए।

3.7 मुख्य अवधारणाएँ

सकारात्मक कार्यवाही (Affirmative Action) : ऐसा शब्द जिसका आरंभिक अभिप्राय महिलाओं और अल्पसंख्यक समूह के रोजगार में कृत्रिम बाधाओं को हटाना था; अब इसका अभिप्राय भूतकालीन पक्षपात के वर्तमान प्रभावों को समाप्त करने के उद्देश्य से अब तक वंचित समूहों को भर्ती, दहाड़ी पर लेने के लिए विशेष प्रयास करने और उनके योग्य सदस्यों को बढ़ावा देने के लिए क्षतिपूर्ति के अवसर प्रदान करना है।

शासन पत्र (Charter) : संविधान के समान स्थानीय सरकार का आदेश।

समानता (Equality) : यह विचार कि सभी व्यक्तियों को जीवन, स्वतंत्रता और प्रसन्न रहने का समान अधिकार है।

सहयोगी संघवाद (Cooperative Federalism) : वह धारणा कि राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारें एक समान या संभवतः विरोधी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए संघर्ष करने, कभी-कभी उग्र प्रतिस्पर्धा करने की अपेक्षा सामान्य समस्याओं के समाधान हेतु सहयोगी, पारस्परिक संपर्कों के साथ मिलकर कार्य करती हैं।

अभिकर्त्ता (Agent) : संस्थात्मक सिद्धान्त स्वतंत्र अभिकरण में विश्वास नहीं करता अपितु प्रचलित सांस्कृतिक नियमों के प्रति संवेदनशीलताओं को अनुकूल बनाता है। चूँकि सामाजिक व्यवहार आश्रित चर (घटक) है अतः कोई व्यक्ति इसके संचालन के कारणों की जाँच कर उपयुक्त संरचनात्मक मध्यस्थताओं के द्वारा संशोधन का प्रयास कर सकता है।

संरचना (Structure) : संस्थात्मककरण के सिद्धान्त के अनुसार संरचना किसी व्यवस्था

या प्रणाली में प्रस्तुत नया विचार है जो एक अवधि के बाद "अभिकर्त्ता" में परिवर्तन लाता है। यह सिद्धान्त किसी सामाजिक घटना या नियम के स्वतंत्र कारण कार्य प्रभाव में विश्वास नहीं करता। विद्यमान चर (घटक/तत्व) होते हैं जो सामाजिक नियमों का संचालन करते हैं और जिन्हें वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए विपरीत अर्थ में भी प्रयुक्त किया जा सकता है।

करिश्माई/विशिष्ट अधिकार (Charismatic Authority) : मैक्स वेबर तीन प्रकार की अधिकार व्यवस्थाओं की बात करता है। पारम्परिक, विशिष्ट तथा कानूनी तर्कसंगत। विशिष्ट अधिकार नेता के व्यक्तिगत आकर्षण या उसे प्राप्त किसी उल्लेखनीय अथवा उत्कृष्ट उपलब्धि से जुड़ा होता है जिससे लोग उसकी तरफ आकर्षित होते हैं। ऐसा अधिकार नेता पर श्रद्धा रखने वाली जनता के द्वारा सौंपा जाता है जो किसी स्थापित प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त किसी योग्यता के आधार पर कानूनी स्थिति के धारण करने से जुड़ा नहीं होता।

कानूनी विवेकपूर्ण अधिकार (Legal Relational Authority) : वेबर के अनुसार आधुनिक शासन के लिए कानूनी विवेकपूर्ण अधिकार एक पूर्व शर्त है। यहाँ अधिकार किसी आरोपित मानदंड जैसे परम्परा या व्यक्तिगत आकर्षण के कारण नहीं अपितु किसी योग्यता के आधार पर प्राप्त स्थिति के कारण मिलता है इसलिए यह कानूनी है।

आकर्षण (विशिष्ट) का नैत्यकरण (Routnisation of Charisma) : विकासशील देशों में जो विकास की विभिन्न अवस्थाओं में हैं, कानूनी विवेकपूर्ण संस्थाएँ विशिष्ट अधिकार को वैधानिक बनाने का साधन बन गई हैं जो प्रकृति में तो आरोपित है फिर भी प्रभावी है। उदाहरण के लिए, किसी प्रधानमंत्री की मृत्यु के बाद उसका बेटा उसका पद संभालता है और बाद में आधुनिक लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से निर्वाचित हो जाता है। समाजशास्त्री के लिए यह स्थिति आरोपित है (मैक्स वेबर)।

अत्यधिक शहरीकरण (Over Urbanisation) : अत्यधिक शहरीकरण परिप्रेक्ष्य इस धारणा पर आधारित है कि विकासशील देशों में शहरी आबादी उनके विकास स्तर से अधिक है जो शहरों की समाने की क्षमता में कमी उत्पन्न कर देती है। यह औद्योगिकीकरण की आरंभिक अवस्थाओं में होता है जहाँ आस-पास के क्षेत्रों से शहरों में अत्यधिक प्रवास हो जाता है लेकिन आर्थिक आधार उनके आगमन की तुलना में कमज़ोर होता है। उनमें से अधिकतर को रोजगार नहीं मिलता जिससे प्रशासनिक और आर्थिक समस्याओं में व्यापक वृद्धि हो जाती है जिससे आगे चलकर सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति होती है। सांप्रदायिक उपद्रव, जातीय संघर्ष और विकृत व्यवहार के अन्य रूप इसके उदाहरण हैं।

3.8 संदर्भ व अन्य लेख

अमल, मंडल, 1999, "सेल्फ गवर्नमेंट नोमेनक्लेचर फॉर पंचायतस" *द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* XLV (2), पृष्ठ 225।

कुमार, अरविंद, 2001, "एनसाइक्लोपीड़िया ऑफ डिसेंट्रलाइज्ड प्लानिंग एण्ड लोकल सेल्फ गवर्नेंस", खण्ड 1, अनमोल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

भार्गव एवं जोस, सी. रेफेल, "वर्किंग ऑफ ग्राम सभा इन कर्नाटक : ए स्टडी एट मैक्रो लेवल", *इंडियन जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट*।

कुमार, विवेक, 2004, "सोशल एक्सलुशन", अल्टरनेट इकॉनामिक सर्वे, इंडिया, मैग्निफाइंग माल डेवलपमेंट, एल्टरनेट सर्वे ग्रुप, रेनवो पब्लिशर्स।

दत्ता, अभिजीत, 1996, "कांस्टीट्यूशनल स्ट्रेन्थनिंग ऑफ लोकल गवर्नमेंट इन ए थर्ड वर्ल्ड फेडरेशन" *द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* 52 (2), पृष्ठ 144-47।

दूबाशी, 1984, "फाउण्डेशन लेक्चर ऑन सेंटर स्टेट लोकल गवर्नमेंट रिलेशनशिप" हैदराबाद, शहरी और पर्यावरण अध्ययन का क्षेत्रीय केन्द्र, उस्मानिया विश्वविद्यालय, पृष्ठ 15।

गहलोत, एन. एस., 2005, "टूवर्डस गुड गवर्नेंस : ए नीड फॉर पॉलिटिकल रिफार्म इन इंडिया"; *पंजाब जर्नल ऑफ पोलिटिक्स,* खण्ड XXIX, संख्या 2।

भारत सरकार, 1985, रिपोर्ट ऑफ द कमेटी टू रिव्यू द एक्सीस्टींग एडमिनिस्ट्रेटिव अरेंजमेंट्स फॉर रूरल डेवलपमेंट एंड पॉवर्टी एलीवेशन प्रोग्राम्स (CAARD), ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली।

भारत सरकार, 1984, रिपोर्ट ऑफ द वर्किंग ग्रुप ऑन डिस्ट्रिक्ट प्लानिंग, योजना आयोग, नई दिल्ली।

भारत सरकार, 1988, कन्सेप्ट पेपर ऑन पंचायती राज, कृषि मंत्रालय, नई दिल्ली।

भारत सरकार, रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन पंचायती राज इंस्टीट्यूशन्स, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि एवं सिंचाई मंत्रालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 102।

भारत सरकार, 1957, रिपोर्ट ऑफ द टीम फॉर द स्टडी ऑफ कम्युनिटी प्रोजेक्ट्स एण्ड नेशनल एक्सटेंशन सर्विसेज, 3 खण्ड, योजना आयोग, नई दिल्ली।

भारत सरकार, 1978, रिपोर्ट ऑफ द कम्युनिटी ऑन पंचायती राज इंस्टीट्यूशन्स, ग्रामीण विकास विभाग, कृषि एवं सिंचाई मंत्रालय, नई दिल्ली।

पाठक, हरबंस, 2006, "डेमोक्रेटिक, डिसेंट्रलाइजेशन एंड रूरल डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन : ए कन्सेप्च्यूयल एनालाइसिस" सिंह, सूरत, सिह, मोहिंदर (संपा), *रूरल डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन दी 21स्ट सेंचुरी,* दीप एवं दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

हॉसर, फीलिप, 1970, द सोशल, इकॉनोमिक एण्ड टेक्नोलोजिकल प्राब्लम्स ऑफ ओवर अर्बनाइजेशन इन बर्ट होसलिट्ज एंड विलबर्ट मोरे (संपा.) इंडस्ट्रीलाइजेशन एण्ड सोसाइटी, पेरिस, यूनेस्को, मौटन, रीड इन फ्रांसिस, एम. अब्राहम, 2006, कन्टेम्परेरी सोशलॉजी : एन इंट्रोडक्शन टू कनसेप्ट्स एण्ड थ्योरीज, ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मलिक, सरोज, 2004, "डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन एण्ड दी पंचायती राज इन इंडिया : द गांधीयन पेराडिज्म", सिंह, सूरत, (संपा), *डिसेंट्रलाइज्ड गवर्नेंस इन इंडिया : माइथ एण्ड रियेलिटी,* दीप एवं दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

मिनोचा, ओ.पी., 1998, "गुड गवर्नेंस, न्यू पब्लिक मैनेजमेंट पर्सपेक्टिव" विशेषांक *द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* नई दिल्ली, जुलाई सितम्बर, पृष्ठ 272-273।

मोहन्ती, पी. के., 1995, म्युनिसिपल डिसेंट्रलाइजेशन एंड गवर्नेस : ऑटोनॉमी, अकांउटबिलिटी एंड पार्टिसिपेशन, *द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* XLI, अंक जनवरी 1, मार्च पृष्ठ 11-30।

मुखर्जी निर्मल, 1994, "सेल्फ गवर्नमेंट एण्ड इट्स इंस्ट्रयूमेंटेलेटिज" *इकॉनामिकस एंड पॉलिटिकल वीकली,* XXIX (14)।

पार्कर, ए. एन., 1995, "डिसेंट्रलाइजेशन : द वे फॉरवर्ड फॉर रूरल डेवलपमेंट" पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर संख्या 1475, विश्व बैंक, वाशिंगटन, डी.सी.।

राधावालू, एवं आनन्द राव (1978), "गांधीयन अप्रोच टू डिसेंट्रलाइजेशन : इंट्स रैलेवेंस", *द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* 24 (3), पृष्ठ 710-722।

रामा रेड्डी, जी., 1982, पंचायती राज एण्ड रूरल डेवलपमेंट इन आंध्र प्रदेश, इंडिया, नोरमन टी. अपहोफ, (संपा.), रूरल डेवलपमेंट एंड लोकल ऑर्गेनाइजेशन इन एशिया, खण्ड 1, नई दिल्ली, मैकमिलन, पृष्ठ 45-133।

शिवया, 1978, "डिसेंट्रलाइजेशन एण्ड पंचायती राज : ए डेवलपमेंट पर्सपेक्टिव", *द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* XXIV (3), पृष्ठ 678-689।

सिंह एवं मिश्रा, 1993, पंचायती राज इंस्टीट्यूशन्स इन इंडिया – द इमरजिंग सिनोरिओ, जे. पी. मिश्रा (संपा.) रिसर्चरर्स इन सोशल साइसीज़, दिल्ली अगामकला प्रकाशन, पृष्ठ 470।

सिंह, यू. बी., "अर्बन एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया : एक्सपिरीयेन्स ऑफ फिफ्टी इयरर्स" सीरियल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 59-66।

संयुक्त राष्ट्र, 1965, डिसेंट्रलाइजेशन फॉर नेशनल एण्ड लोकल डेवलपमेंट, संयुक्त राष्ट्र, न्यूयॉर्क, पृष्ठ 88-89।

"लोकल गवर्नमेंट फाइनेंसीज़ इन इंडिया" (प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन "इमरजिंग ट्रेंड्स इन इंडियन लोकल गवर्नमेंट फाइनेंसीज" ग्रामीण विकास राष्ट्रीय संस्थान, हैदराबाद, 24-25 अक्तूबर, 1996, कोनार्ड एडेनूयर फाउण्डेशन, पब्लिक अंडर द ऑस्पीसीस ऑफ द कोनार्ड एडेनूयर फाउण्डेशन, मनोहर, 1998)

यू. के. हिक्स, "डेवलपमेंट फ्रोम बीलो", द क्लेरनड्न प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1961, पृष्ठ 227।

जे.पी. नारायण, "डिसेंट्रलाइजेशन डेमोक्रेसी : थ्योरी एंड प्रैक्टिस, *द इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* VII (3), जुलाई-सितम्बर, 1961, पृष्ठ 274, नई दिल्ली।

माही पाल, "फाइनेंशियल रिसोर्स ऑफ पंचायती राज : टॉस्कस अहैड", *कुरुक्षेत्र,* अप्रैल, 1996, पृष्ठ 39।

जैन, एल. सी., "पंचायत्स रिमूव द वीडस" *कुरुक्षेत्र,* अप्रैल, 1996, पृष्ठ 39।

बावा, नूरजहाँ, एनहांनसिंग फाइनेंशियल ऑटोनोमी ऑफ पी.आर.आई" टॉस्क बिफोर स्टेट फाइनेंस

कमीशन, *कुरुक्षेत्र*, अप्रैल, 1966, पृष्ठ 16।

भारत सरकार, दसवीं वित्त आयोग रिपोर्ट, 1994, पृष्ठ 6।

भारत सरकार, 2005, योजना आयोग, दसवीं पंचवर्षीय योजना, 2002-07, मिड टर्म अपरेजल, अध्याय 17, "गवर्नेन्स एंड डेवलपमेंट"।

भारत सरकार, जून 2005, योजना आयोग, मिड टर्म अपरेजल ऑफ टैन्थ फाइव ईयर प्लान, 2002-2007, अध्याय 17, "गवर्नेन्स एंड डेवलपमेंट", अध्याय 11, अर्बन इनफ्रास्ट्रक्चर, अध्याय 9, ट्रॉसपोर्ट एण्ड इंफॉरमेशन एण्ड कम्युनिकेशन, टैक्नोलॉजी।

3.9 अभ्यास

1) लोकतांत्रिककरण और विकेन्द्रीकरण की संकल्पनाओं की चर्चा कीजिए।

2) विकेन्द्रीकरण के संदर्भात्मक आयामों – सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक – को उजागर कीजिए।